प्रकाशक
सरस्वती ग्रन्थमाला

मुख्य कार्यालय :
A-28, जनता कालोनी
जयपुर-4

कार्यालय :
2151, हैदरी भवन
मनिहारों का रास्ता, जयपुर-3

मूल्य छह रुपया

1984

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	गाथा नं०	अशुद्ध	शुद्ध
४	८	कर्त्तृत्वरूप	जिस भाव रूप
८	४४	मायाचारी नारी में यथा	त्रियामायाचार इव
१४	६२	उसे	उस
२०	—	जानतर हुआ	जानता हुआ

प्रस्तावना

जैन अध्यात्म के पुरस्कर्त्ता आचार्य कुन्दकुन्द की प्रवचनसार एक अत्यधिक महत्वपूर्ण कृति है। जिसकी गणना अध्यात्म विषयक सर्वोच्च ग्रंथ रत्नों में की जाती है। आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व निबद्ध प्राकृत भाषा के इस यशस्वी ग्रंथ में आचार्य कुन्दकुन्द ने भगवान महावीर के प्रवचनों का मानो सार ही उंडेल दिया है। यह तीन अधिकारों में विभक्त है। ये अधिकार हैं ज्ञानाधिकार, ज्ञेयाधिकार एवं चारित्राधिकार। दूसरे शब्दों में कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रथम अधिकार में अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख का, दूसरे अधिकार में तत्व व्यवस्था का तथा तीसरे अधिकार में मुनि के चरित्र धर्म का वर्णन किया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने शुभोपयोग को सर्वथा होय नहीं कहा किन्तु यह भी कहा है कि गृहस्थ धर्म में तो शुभोपयोग की ही प्रधानता होती है। प्रवचनसार में आचार्य कुन्द-कुन्द ने मुनि अथवा साधु के लिये श्रमण शब्द का प्रयोग किया है। इसी से जैन संस्कृति श्रमण संस्कृति कही जाती है। यही नहीं इस अधिकार में आचार्य कुन्द कुन्द ने मुनि चर्या पर अच्छा प्रकाश डाला है।

प्रवचनसार पर सर्वप्रथम अमृतचन्द्राचार्य ने संस्कृत में टीका लिखकर इसके पठन पाठन को अत्यधिक लोकप्रियता प्रदान की। जैसे प्रवचनसार महान् ग्रन्थ है उसी प्रकार इसकी टीका भी उतनी ही महान् है। टीका में टीकाकार का वैदुष्य पद पद पर लक्षित होता है। अमृतचन्द्र के पश्चात् जयसेन ने संस्कृत में टीका लिखी और प्रवचनसार के रहस्य को समझाने में बहुत योग दिया। इसके पश्चात् पं० प्रभाचन्द्र ने प्रवचनसार पर संस्कृत में टीका लिखने का श्रेय प्राप्त किया। जब हिन्दी में टीका करने का युग आया तो सर्व प्रथम संवत् 1709 में आगरा निवासी हेमराज अग्रवाल ने प्रवचनसार पर गद्य पद्य दोनों में टीकाएं लिखने का सौभाग्य प्राप्त किया। हेमराज की गद्यात्मक टीकाएं बहुत लोकप्रिय रहीं और इसी के आधार पर कामांगढ़ (राज०) निवासी हेमराज बोदीका (खण्डेलवाल) ने प्रवचनसार पर एक और हिन्दी पद्य टीका लिखी जिसकी पद्य संख्या 8005 है। इस टीका के पश्चात् जोधराज गोदीका ने प्रवचनसार पर पद्य में लिखी, जो अपने समय की लोकप्रिय कृति मानी जाती है। जोधराज के पश्चात् प्रवचन-सार पर गद्य टीका लिखने वालो, में वृन्दावन का नाम उल्लेखनीय है।

वर्तमान शताब्दि के विद्वानों में ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी ने प्रवचनसार पर वृहत हिन्दी टीका लिखी जो दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत से तीन भागों में प्रकाशित हो चुकी है। आचार्य ज्ञानसागर जी ने प्रवचनसार पर हिन्दी पद्यानुवाद एवं गद्य में सारांश लिखकर उसके महत्व को साहित्यिक जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया। अभी सन् 1982 में मालवा के कवि श्री नाथूराम डोंगरीय ने प्रवचनसार सौरभ के नाम से गाथाओं का पद्य एवं गद्य में सुन्दर काव्य रचना कर यशस्वी कार्य किया।

ऐसी लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण आध्यात्मिक कृति पर मेरे अनुज वैद्य प्रभु दयाल कासलीवाल ने 'प्रवचनसार प्रकाश' नाम से गाथाओं का पद्यानुवाद करके उसे प्रकाशित किया है। इसके पूर्व वैद्य कासलीवाल ने समयसार प्रकाश की रचना की थी जो समयसार की गाथाओं का पद्यानुवाद है। इसी तरह अपनी प्रथम कृति "आत्म विनिश्चयम्" लघु पुस्तक में लेखक ने आत्मा को जानने समझने पर अच्छा प्रकाश डाला है। आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों का पद्यानुवाद करने की ओर उनकी रुचि जाग्रत हुई है वह निस्संदेह प्रशंसनीय है। प्रस्तुत प्रवचनसार प्रकाश से आचार्य कुन्दकुन्द के मूल पाठ को पढ़े बिना भी उसके रहस्य को समझने में पाठकों को सहायता मिलेगी ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। पद्यानुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है तथा गाथा के मूल अर्थ को सुरक्षित रखा गया है। मैं भाई प्रभुदयाल जी की इस कृति का स्वागत करता हूं।

867 अमृत कलश
बरकत कालोनी, किसान मार्ग,
टोंक फाटक, जयपुर–15

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रकाशकीय

जैन संस्कृति तथा साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन एवं उनका सरल भाषा में अनुवाद कर उनका प्रचार प्रसार करना सरस्वती ग्रन्थमाला के प्रमुख कार्य हैं। इसी दिशा में ग्रन्थमाला से श्रीमान् वैद्य प्रभुदयाल जी कासलीवाल द्वारा रचित "आत्म विनिश्चयम्" एवं अनुदित "समयसार प्रकाश" 1983 में प्रकाशित की गई थी। ये दोनों ही पुस्तकें अध्यात्म के जिज्ञासु पाठकों द्वारा तथा साहित्यिकों द्वारा समादृत हुई हैं। उद्देश्यानुसार अध्यात्म प्रेमियों को और भी पुस्तकें प्राप्त हो सके, इसके लिए ग्रंथमाला की ओर से श्री वैद्यजी से प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय कुन्दकुन्दाचार्य के इन दो ग्रंथों का हिन्दीं सरलभाषा में पद्यानुवाद करने का आग्रह किया था। हमें प्रसन्नता है कि वैद्यजी द्वारा अनुदित "प्रवचन-सार-प्रकाश" हम पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

भाषा भावों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। किन्तु अनेक प्रसंगों में भाषा एवं भावों में ताल मेल नहीं होता। कहीं भाषा विश्लेषण एवं आडम्बर के प्रवाह में बह जाती है तो कहीं भाव भाषा की दुरूहता में उलझ जाते हैं। कहीं भावों की अभिव्यक्ति के लिए लेखक लम्बी दूर तक अनावश्यक पगडंडियों पर पाठक को ले जाता है, तो कहीं लेखक पाठक को बिना घुमाये हुए ही गन्तव्य तक पहुंचने की साधना करता है। परन्तु प्रस्तुत रचना में इधर उधर भाषा के लम्बे दुरूह रास्ते से न ले जाकर निकटतम रास्ते से भावों का अनुभूति तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया है। "गागर में सागर" सम यह "प्रवचनसार-प्रकाश" सागर मन्थन के बाद निकाला वह नवनीत है, गोतोखोरों द्वारा गोता लगाकर सागर से प्राप्त किये गये वे मोती हैं, फूलों के मकरन्द से एकत्रित किया गया वह मधु है, एवं साधना, चिन्तन तथा परिश्रम के पश्चात् प्राप्त वह सत्य है जिसे प्रकाश तत्व कहा जाता है।

प्रस्तुत पुस्तक प्रेरणास्पद युक्तियों-सुक्तियों से भरी पड़ी है। वैद्यजी की यह अनुदित कृति अनुभूति की गहराई की ओर संकेत करती है। उनकी मूल रचनायें सभी से समादृत हुई हैं, भविष्य उनसे और पाने की आशा संजोये हुए

है। हमें विश्वास हैं उनकी यह बहुमूल्य कृति व्यापक रूप से समादृत होगी और लोक जीवन को समुदित दिशा देने में सफलता प्राप्त करेंगी।

डॉ० प्रेमचन्द जैन
संयोजक
तदर्थ समिति
सरस्वती ग्रन्थ माला
जयपुर

इस पुस्तक के प्रकाशन कार्य में निम्नलिखित महानुभावों ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है एतदर्थ धन्यवाद।

500) श्रीमान् लेखचन्द जी वाकलीवाल "ललित फिल्मस्" जयपुर।
200) श्रीमान् सोहनलाल जी जैन "जयपुर प्रिण्टर्स" एम. आई. रोड़ जयपुर।
200) श्रीमान् सुभापचन्द जी कासलीवाल "शेयरर्स ब्रोकर इन्वेस्टमेन्ट कन्सलटेन्सी सेण्टर, A/28 जनता कालोनी जयपुर।

विषय-सूची

प्रवचनसार प्रकाश रचयिता के दो शब्द

मुक्त हुए श्री वीर प्रभु और वर्तमान प्रभु सीमन्धर।
शत शत नमस्कार उनको जो ज्ञान-प्रकाशक जग हित कर ॥

विदेह क्षेत्र में जो वर्तमान विंशति तीर्थंकर हैं, उनमें एक भगवान सीमंधर भी हैं। तीर्थंकर चाहे वे किसी भी क्षेत्र और किसी भी काल में हुए हों, उनकी वाणी प्राणी मात्र के कल्याण के लिये होती है। सभी तीर्थंकरों ने स्वयं का कल्याण किया एवं प्राणी मात्र को कल्याण का मार्ग बतलाया। भगवान महावीर का तो इस समय शासन काल है-उनकी दिव्य ध्वनी में जो कल्याण का मार्ग बतलाया, भरतक्षेत्र में उसी का अनुसरण हो रहा है। भगवान सीमंधर विदेह क्षेत्र में हैं, आचार्य शिरोमणी कुंदकुंद अपनी अपूर्व सिद्धियों के कारण स्वयं सशरीर विदेह क्षेत्र में गये और सात दिन वहां रह कर सीमंधर भगवान की दिव्य ध्वनि से ज्ञान प्राप्त किया। पुनः भरत क्षेत्र में आकर आचार्य शिरोमणी ने द्रव्यानुयोग के महान् शास्त्रों की रचना की। उन शास्त्रों में समयसार प्रवचनसार नियमसार पंचास्तिकाय मुख्य हैं। इन शास्त्रों में संसार के सम्पूर्ण कष्टों से छूटकर मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग बतलाया है।

वैसे तो मैंने गोम्मटसार, धवल जयधवल, सर्वार्थ सिद्धि आदि अनेक ग्रन्थों का भी स्वाध्याय किया है, लेकिन आत्मज्ञान प्राप्त करने की विधि, आत्मा व पुद्गल का अनादि कालीन सम्बन्ध स्व व पर का भेद ज्ञान जिस सुगम विधि से आचार्य कुन्दकुन्द ने समझाया है वह अपूर्व विधि है। रुचि पूर्वक समझकर यदि कोई भी मनुष्य इन शास्त्रों का स्वाध्याय करता है तो उसको आत्मज्ञान सहज में ही उपलब्ध हो सकता है यह निश्चय है। अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है। जो भी स्वाध्याय करेगा उसको स्वयं को ही इन शास्त्रों का महत्व मालुम हो जायेगा।

इन शास्त्रों को जन साधारण के उपयोगी बनाने के हेतु जितना भी प्रयत्न हो उतना ही श्रेयस्कर है। इसी उद्देश्य से मैंने भी सर्व प्रथम 'आत्म विनिश्चयम्' नाम से एक पुस्तक लिखी, उसमें आत्मा का रहस्य, विकास विधि एवं प्राप्ति को

सरल हिन्दी भाषा में लिखा। इस पुस्तक को साधारण हिन्दी ज्ञान रखने वाला भी पढ़कर आत्मा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। द्वितीय ग्रंथ समयसार प्रकाश लिखा इस ग्रंथ में आचार्य शिरोमणि कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत—महान् ग्रंथ समयसार का सरल हिन्दी भाषा में भाव रूप और साररूप में पद्यानुवाद किया। यह दोनों प्रकाशन समाज की सेवा में समर्पित किये जा चुके हैं।

तीसरे यह प्रवचनसार प्रकाश ग्रंथ का भी सरल हिन्दी भाषा में साररूप और भावरूप में पद्य रचना करके समाज की सेवा में समर्पित करते हुए मैं प्रसन्नता का अनुभव करता हूं। आशा है गल्तियों को क्षमा करते हुए भविष्य के लिये विद्वज्जन मार्ग प्रशस्त करने की कृपा करेंगे।

वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल
A-28 जनता कालोनी जयपुर
13/4/84

मंगलाचरण

मंगलकारी अमृत वर्षा जब होती वह धन्य समय।
लोक प्रदीपक ऋषिगण बोलें धन्य वह भाषा और लय ॥1॥

जिस भाषा और शब्दामृत को पीकर मनुज गये निर्वाण।
जिस भाषा और शब्दामृत से दानव देव बने धीमान् ॥2॥

जिस भाषा से जीव मात्र ने निज स्वरूप पहचाना था।
जिस भाषा से स्व और पर का भेद समझ जग जाना था ॥3॥

जिस भाषा से पूर्ण ज्ञान कर प्रकट, कर्म सब जीते थे।
दर्शन ज्ञान वीर्य और सुख निज के गुण हैं पहचाने थे ॥4॥

जिनके आत्म प्रदेशों से वह दिव्य ध्वनि खिर पायी थी।
जिन प्रभु श्री सर्वज्ञ देव की जग हित ध्वनि प्रकाशी थी ॥5॥

उस वीर प्रभु अर्हन्त देव को नित उठ शत शत बार नमूं।
आत्म दृष्टि से जग ज्ञाता को बारम्बार प्रणाम करूं ॥6॥

असुरेन्द्र सुरेन्द्र और महीपति भी जिनका वन्दन करते हैं।
घाति मलों के नाशक ऐसे वीर प्रभु को नमता हूं ॥1॥

दर्शन ज्ञान चारित्र वीर्य और तपाचरित श्रमणों को भी।
नमन करूं सब ही तीर्थंकर सब सिद्धों को नमता हूं ॥2॥

मनुज क्षेत्र में वर्तमान सब अरहन्तों को नमता हूं।
व्यक्ति और समुदाय रूप में उन उन सब को नमता हूं ॥3॥

इस विधि अर्हंत् और सिद्धों को गणधर जी को नमता हूं।
उपाध्याय और सब साधु को जग में शीश झुकाता हूं ॥4॥

आचार्य मंगलाचरण करके कहते हैं कि दर्शन ज्ञान और चारित्र ही हैं प्रधान जिनके, तथा जो इन तीनों के प्रधानत्व से ही तीर्थंकर और केवली बने हैं, उनके बतालाये हुए मार्ग पर मैं भी अपने आप को स्थापित करता हूं जिससे साम्य अवस्था को प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त कर सकूं।

फिर उनके आश्रम विशुद्ध जो दर्शन ज्ञान प्रधानी हैं।
प्राप्त करूं मैं बनूं साम्य फिर जो निर्वाण प्राप्ति हित हैं ॥5॥

प्रवचनसार प्रकाश
ज्ञान तत्व प्रज्ञापन
(1)

आत्मा अनन्त धर्मी है, अर्थात् आत्मा में अनन्त गुण विद्यमान हैं, अथवा यों कहें कि अनन्त गुणों का समूह ही आत्मा में है। अनन्त गुणों की सत्ता होने पर भी आत्मा के प्रमुख गुण ज्ञान दर्शन वीर्य और सुख हैं। जिस प्रकार सुर्य में सहस्र गुण होते हुए भी अग्नि और प्रकाश उसके मुख्य गुण हैं, उसी प्रकार आत्मा के ज्ञान दर्शनादि गुण मुख्य हैं। ज्ञायक और दर्शक गुण तो आत्मा के इतने प्रमुख हैं कि इन गुणों के बिना आत्माका अस्तित्व ही प्रकट नहीं होता। आत्मा स्वयं ज्ञान रूप परिणमन करने से ज्ञायक कहलाता है अथवा यों कहा जाय कि ज्ञान ही आत्मा है और आत्मा ही ज्ञान है तो यह आत्मा का उचित ही परिचय होगा।

आचार्य शिरोमणि कुन्दकुन्द ने भी आत्मा के ज्ञान तत्व को इतना ही महत्व दिया है और यही कारण है कि प्रवचनसार के प्रथम श्रुत स्कन्ध को ज्ञान तत्व प्रज्ञापन के नाम से लिखा है।

इस ज्ञान तत्व प्रज्ञापन में मंगलाचरण करने के वाद आचार्य ने स्वयं को दर्शन ज्ञान प्रधानी बनाने की कामना की है तथा कहा है मैं विषम अवस्था (संसार अवस्था) से निकल कर साम्य अवस्था को प्राप्त करूं जो अवस्था निर्वाण प्राप्ति के लिये है।

यह जीव सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेके वाद जब सम्यक् चारित्र का पालन करता है तब वह साम्य भाव साम्य अवस्था को प्राप्त करता है। तब शुद्धोपयोगी कहलाता है। शुद्धोपयोगी जीव ही आत्मा की शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है, आत्मा की शुद्ध अवस्था प्राप्त करके ही निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है।

भावों की श्रेष्ठता और हीनता के भेद से उपयोग तीन प्रकार का माना गया है। शुद्धोपयोग, शुभोपयोग और अशुभोपयोग ।

शुद्धोपयोग---मैं आत्मा हूं। द्रव्य रूप से और स्वभाव रूप से मैं शुद्ध चैतन्य द्रव्य हूं। मेरे शुद्ध रूप में कर्म और नोकर्म नहीं हैं। अर्थात् बन्धन कारक कर्म और शरीर, स्त्री, पुत्र, महल, बगीचा आदि नो कर्म मुझ से भिन्न हैं, मेरे शुद्ध रूप में राग द्वेष मोह मायादि भाव नहीं हैं, मेरे शुद्ध रूप में नर नारकादि पर्यायें नहीं हैं। मेरे शुद्ध रूप में बाल वृद्ध यौवन अवस्थायें नहीं हैं। मेरे शुद्ध रूप में अनन्त ज्ञान अनंत दर्शन अनन्तवीर्य और अनंत सुख विद्यमान हैं। इस प्रकार का चिन्तन ज्ञान और प्रतीति शुद्धोपयोग कहलाता है।

शुभोपयोग---जब जीव की मन्द कषाय अवस्था रहती है वह अरिहन्त सिद्ध भक्ति में लीन रहता है, धार्मिक कार्यों में रूचि रखता है, संसार हित कारक भावना भाता है तब वह शुभोपयोगी होता है। शुभोपयोग से स्वर्ग, मनुष्य और तिर्यन्च अवस्था के सुख प्राप्त होते हैं।

अशुभोपयोग—जीव के जब संक्लेश परिणाम होते हैं वह तीव्र कषाय करता है। तथा दूसरों को कष्ट पहुंचाने के भाव लोक अहित कारक भाव अशुभोपयोगी कहलाते हैं। इससे यह जीव नरक, तिर्यन्च, निगोद आदि के दुःख भोगता है।

इस तरह शुद्धोपयोग, शुभोपयोग व अशुभोपयोग इन तीनों को सूक्ष्म रूप से समझना आवश्यक है। अशुभोपयोग से तो पूर्ण रूप से बचने की आवश्यकता है क्योंकि जितने भी सांसारिक कष्ट उत्पन्न होते हैं वे सब अशुभोपयोग के कारण ही हैं। शुभोपयोग भी आत्म कल्याण कारी नहीं है। यद्यपि शुभोपयोग से स्वर्ग तक के सुख प्राप्त होते हैं, लेकिन उत्कृष्ट सुख तो शुभोपयोग से भी आत्म ज्ञान प्राप्ति के बिना नहीं मिलता अतः आत्म ज्ञान होना सब से अधिक आवश्यक है। संसार के दुखों से मुक्ति के लिए तो शुद्धोपयोग ही साधन है।

इस ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापन में इसी तरह के भावों का चित्रण किया गया है।

आचार्य कहते हैं कि ज्ञान प्रधान चारित्र से वीतराग अवस्था में मोक्ष की प्राप्ति होती है तथा सराग अवस्था में स्वर्ग और इस लोक के वैभव प्राप्त होते हैं-

दर्शन ज्ञान प्रधान जीव बन पूर्ण चरित्र पालन करके।
मोक्ष प्राप्त करता है निश्चित, देवासुर मनु वैभव वा ॥6॥

चारित्र का लक्षण—

निश्चय से चारित्र धर्म है, धर्म नाम समता रस का।
मोह क्षोभ से रहित आत्म का, साम्य भाव परिणाम कहा ॥7॥
जिस पर्याय से द्रव्य यह कर्तृत्व रूप परिणमन करे।
तन्मय वह है, अतः आत्म की धर्म परिणति धर्म बने ॥8॥

परिणाम के अनुसार उपयोग रहता है —

परिणमन जब शुभाशुभ हो, शुभाशुभ उपयोग है।
शुद्ध से शुद्धोपयोगी, परिणाम स्वभावी जीव है ॥9॥

परिणाम वस्तु का स्वभाव है —

परिणाम बिन न पदार्थ जग में, पदार्थ बिन परिणाम नहीं।
द्रव्य गुण पर्याय आश्रित है पदार्थ अस्तित्वमय ॥10॥

शुद्धोपयोगी निर्वाण और शुभोपयोगी स्वर्ग प्राप्त करता है —

धर्म से परिणमित आत्मा शुद्ध यदि उपयोग से।
निर्वाण सुख को प्राप्त करता, स्वर्ग शुभ उपयोग से ॥11॥

अशुभोपयोगी अनेक तरह के दुख भोगता है —

अशुभोदय से यह आत्मा, कुमनुष्य तिर्यन्च बने।
अथवा नारक बन कर वह तो, दुख हजार भोगत ही भ्रमे ॥12॥

शुद्धोपयोग की प्रशंसा—

शुद्धोपयोग से शुद्ध आत्म तो, सुख अनन्त का धारी है।
अतिशय आत्मोत्पन्न अतीन्द्रिय सुख उसका अविनाशी है ॥13॥

शुद्धोपयोगी आत्मा का स्वरूप—

नव पदार्थ[1] सूत्रों[2] का ज्ञाता, संयम तप से युक्त रहे।
राग रहित सुख दुःख समान गिन, शुद्धोपयोगी श्रमण बने ॥14॥

शुद्धोपयोगी केवलज्ञानी बनता है—

उपयोग विशुद्ध आत्म, मोहादि घाति कर्म से रहित, शनैः।
स्वयं होता हुआ वह तो ज्ञेय पदार्थ सभी जाने ॥15॥

---

1. जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष, पुण्य और पाप
2. ग्यारह अंग और चौदह पूर्व

निज स्वभाव प्राप्त कर आत्मा सर्वज्ञ बनता है—

इस प्रकार से यह आत्मा निज स्वभाव को प्राप्त करे।
बन कर सर्व लोकपति पूजित, सर्वज्ञ स्वयंभू वह बने ॥16॥

स्वयंभू आत्मा अविनाशी होता है। कथंचित उसके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्तता रहती है—

उत्पाद विनाश रहित होता है, उत्पाद हीन विनाश अरे।
समवाय विरोध नहीं फिर भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य शुद्धातमके ॥17॥

द्रव्य स्वभाव से ध्रुव है—लेकिन पर्याय की अपेक्षा नहीं—

पदार्थ मात्र की, पर्यायों से विनाश और उत्पत्ति है।
किसी किसी पर्याय से उसमें, ध्रुवता बनी ही रहती है ॥18॥

आत्मा इन्द्रियों के बिना ही ज्ञान और आनन्द प्राप्त करता है—

घाति कर्म नष्ट जिनके हैं अनन्त वीर्य अतीन्द्रिय हैं।
अति तेजस्वी स्वयंभू आतम, सुख ज्ञान रूप परिणमते हैं ॥19॥

अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होने पर शारीरिक सुख दुःख नहीं होते, कवलाहार भी नहीं होता—

शरीर सम्बन्धी सुख और दुख, केवलज्ञानी के नहीं होते।
क्योंकि अतीन्द्रिय वे होते हैं, इस कारण से नहीं होते ॥20॥

केवली अवग्रहादिक के बिना द्रव्यों की सम्पूर्ण पर्यायें जानते हैं—

ज्ञान रूप परिणमन केवली करते, सब ही द्रव्यों की।
पर्यायें प्रत्यक्ष जानते, बिना क्रिया अवग्रहादिक की ॥21॥

केवली प्रभु अतीन्द्रिय हैं, आत्म प्रदेशों से सर्व इन्द्रिय गुण भी उनमें विद्यमान हैं—

केवली प्रभु हैं अतीन्द्रिय, इन्द्रिय गुणों से पूर्ण हैं।
स्वयमेव ज्ञान हुआ है जिनको, परोक्ष उनको कुछ न है ॥22॥

आत्मा ज्ञान प्रमाण है और ज्ञान सर्वगत है—

ज्ञान प्रमाण है यह आत्मा, ज्ञेय प्रमाण है ज्ञान कहा।
लोकालोक ज्ञेय है सारा, अतः ज्ञान सर्वगत है कहा ॥23॥

आत्मा ज्ञान को प्रमाण न मानने में दोष आता है—

इस आतम को ज्ञान प्रमाण जो नहीं मानता इस जग में।
यह आतमा हीन अधिक होगी अवश्य उनके मत में ॥24॥

हीन ज्ञान से यदि आत्मा, ज्ञान अचेतन नहीं जाने।
यदि अधिक हो ज्ञान से आतम, ज्ञान विना कैसे जाने ॥25॥

केवली भगवान ज्ञान के विषय सम्पूर्ण पदार्थों को जानते हैं—

द्रव्य और पर्याय त्रिकाली सब पदार्थ की जिन जाने।
क्योंकि जिनवर ज्ञानमयी हैं, ज्ञान विषय हैं सभी पदार्थ ॥26॥

आत्मा और ज्ञान के एकत्व अन्यत्व का विचार करते हैं—

ज्ञान आत्म है, आत्म विना नहीं ज्ञान कहीं पर होता है।
अतः ज्ञान आत्मा है होता, आत्मा ज्ञान वा अन्य भी है ॥27॥

ज्ञान ज्ञेय को जानता है, ज्ञेय ज्ञान द्वारा जाना जाता है। पर एक दूसरे में प्रवेश नहीं करते—

ज्ञेय स्वरूप पदार्थ आत्म के, ज्ञान स्वभाव आत्मा है।
ज्ञान ज्ञेय वर्ते न परस्पर, रूप नेत्र जिस विधि से है ॥28॥

जिस प्रकार नेत्र दृश्य पदार्थ को उसमें अप्रविष्ट रहकर तथा अप्रविष्ट न रहकर जानते हैं उसी प्रकार आत्मा ज्ञेय पदार्थ को जानता है—

आत्म अतीन्द्रिय, प्रविष्ट नहीं अप्रविष्ट नहीं जग जानत है।
जिस विधि नेत्र रूप को जाने, उस विधि ज्ञान ज्ञेय को है ॥29॥

अब इस को उदाहरण द्वारा समझाते हैं—

इन्द्र नीलमणि दुग्ध बीच में पड़ा हुआ निज आभा से।
दुग्ध में वर्तन करता, वैसे ज्ञान पदारथ में वर्ते ॥30॥

पदार्थ ज्ञान में क्यों वर्तते हैं यह बतलाते हैं—

पदार्थ ज्ञान में यदि नहीं वर्ते, ज्ञान सर्वगत नहीं होवे।
ज्ञान सर्वगत यदि होता है, पदार्थ ज्ञान-स्थिति निश्चित है ॥31॥

आत्मा की पदार्थों के साथ एक दूसरे में प्रवृत्ति होने पर भी एक दूसरे का ग्रहण वा त्याग नहीं करते—

न ग्रहण करे न त्याग करे, परिणमन भी पर रूप नहीं।
देखे जाने सर्व ओर से अशेष विश्व को जिन भगवान ॥32॥

श्रुतकेवली की परिभाषा—

ज्ञायक स्वभाव आत्माका होता श्रुत से जाने जो उसको।
लोक प्रदीपक ऋषिगण जग के श्रुतकेवली कहते उसको ॥33॥

श्रुत केवली सूत्रों का ज्ञाता होता है। सूत्र ही ज्ञान है-केवली और श्रुत केवली दोनों ज्ञानमय हैं—

पुद्गल द्रव्यात्मक वचनों से, जिनवर उपदेश ही सूत्र कहा।
सूत्र ज्ञान ही ज्ञान कहाता, सूत्र ज्ञप्ति उसको ही कहा ॥34॥

आत्मा का स्वभाव ही ज्ञान है-ज्ञान आत्मा से अनन्य है—

आत्मा ज्ञायक नहीं ज्ञान से, जो जाने ज्ञान कहाता है।
ज्ञान परिणमन स्वयं आत्म का, सब पदार्थ ज्ञानस्थित है ॥35॥

ज्ञान और ज्ञेय को बतलाते हैं—

अतः जीव ज्ञान है होता, त्रिधा वर्णित द्रव्य है ज्ञेय।
पुनः द्रव्य आत्मा और पर, परिणाम सम्बन्धी होते हैं ॥36॥

सम्पूर्ण द्रव्यों की भूत और भविष्य पर्यायें वर्तमान पर्याय की भांति ज्ञान में वर्तती हैं—

द्रव्य जातियों की उनकी सद् और असद् सब पर्यायें।
ज्ञान में वर्ते विशेष सहित, जैसे तात्कालिक पर्यायें ॥37॥

नष्ट हुई सब पर्यायें और जो भविष्य में सब होंगी।
अविद्यमान वे पर्यायें सब ज्ञान में हैं प्रत्यक्ष कही ॥38॥

भूत भविष्य और वर्तमान की सब पर्यायों को जानने के कारण ही ज्ञान दिव्य कहलाता है—

भूतकाल में नष्ट सभी, और अनुत्पन्न सब पर्यायें।
ज्ञान के यदि प्रत्यक्ष न हो तो, दिव्य ज्ञान उसे कौन कहे ॥39॥

जो ईहादिक से पदार्थ को जानते हैं वे इन्द्रि अगोचर को नहीं जानते—

जो इन्द्रिय गोचर पदार्थ को ईहादिक से जाने है।
वे परोक्ष भूत किसी द्रव्य को जान सके यह शक्य न है ॥40॥

अतीन्द्रिय ज्ञान तीन लोक और तीन काल को जानता है यह सम्भव है—

अप्रदेश और सप्रदेश को मूर्त अमूर्त सब द्रव्यों को।
ज्ञान अतीन्द्रिय है जो जाने भूत भविष्य पर्यायों को ॥41॥

ज्ञेय पदार्थों का ज्ञान होना मात्र आत्मा का धर्म है ज्ञेय पदार्थों में उलझन रखने वाले क्षायिक ज्ञानी नहीं हैं—

ज्ञेय पदार्थ रूप परिणमन यदि ज्ञाताजी करते हैं।
कर्म अनुभवी वह कहलाते, क्षायिक ज्ञानी वे नहीं हैं ॥42॥

जो कर्मों के उदय से कर्मांश प्राप्त होते हैं उनमें रागी द्वेषी होना बन्धन है—

उदय प्राप्त कर्मांश नियम से संसारी के होते हैं।
कर्मांशों में रागी द्वेषी मोही बन्धक बनते हैं ॥43॥

अरहन्त की क्रिया स्वाभाविक है फल दायक नहीं—

विहार करें या खड़े रहें धर्मोपदेश अरहन्त करें।
क्रिया सभी स्वाभाविक उनकी मायाचारी नारी में यथा ॥44॥

अरहन्त की क्रिया मोहादि रहित है अतः क्षायिकी है।

अर्हंत हैं पुण्य फल वाले, क्रिया औदयिकी[1] उनकी।
मोहादि से रहित क्रिया सब, अतः क्षायिकी[2] है मानी ॥45॥

अज्ञानावस्था में यह आत्मा शुभ या अशुभ परिणमन करता है वह भी उस अवस्था का स्वाभाव है।

यदि स्वभाव से स्वयं आत्मा, शुभ या अशुभ नहीं होवे।
समस्त जीव निकायों के संसार अभाव सिद्ध होवे ॥46॥

1.) पुण्य उदय से होने वाली

2.) कर्मों को क्षय करने वाली

क्षायिक ज्ञान का लक्षण—

युगपत् आत्म प्रदेशों से, विषम विचित्र द्रव्य जाने।
तात्कालिक और अन्य सभी को, क्षायिक ज्ञान उसे माने ॥47॥

एक साथ तीन लोक तीन काल के द्रव्यों को एक साथ न जानने वाला एक द्रव्य भी पर्याय सहित नहीं जानता—

जो नहीं जाने युगपत् सारे तीन काल के द्रव्यों को।
जान सके नहीं वह जग में पर्याय सहित एक को भी ॥48॥

द्रव्य की अनन्त जाति है एक द्रव्य की अनन्त पर्याय है। इनको केवली एक साथ जानते हैं—

अनन्त पर्यायी आत्म द्रव्य को द्रव्य समूह अनन्तों को।
जो युगपत् नहीं जाने कोई, वह कैसे जाने सबको ॥49॥

आत्मज्ञान परावलम्बी नहीं है—

आत्मज्ञान उत्पन्न यदि हो, क्रमशः पदार्थ अवलम्बन ले।
तो वह क्षायिक नित्य नहीं है और सर्वगत भी नहीं रे ॥50॥

जिनवर के ज्ञान की महिमा—

तीन काल के सदा विषम जो सर्व क्षेत्र के विविध पदार्थ।
जिनवर युगपंत् ज्ञान से जाने, ज्ञान की महिमा अपरम्पार ॥51॥

ज्ञानी आत्मा द्रव्यों का केवल ज्ञाता दृष्टा होता है द्रव्य रूप परिणमन नहीं करता अतः बन्ध नहीं होता—

जानता हुआ सभी द्रव्यों को परिणमे नहीं आत्म उस रूप।
ग्रहण और उत्पन्न न करता अतः अबन्धक उसका रूप ॥52॥

ज्ञान और सुखकी हेयोपादेयता का वर्णन करते हैं—

पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान अतीन्द्रिय ऐन्द्रिय मूर्त अमूर्त तू जान।
इसी तरह से सुख भी होता, उपादेय उत्कृष्ट प्रधान ॥53॥

प्रत्यक्ष ज्ञान की परिभाषा—

दर्शक का जो ज्ञान, अमूर्त को मूर्तों में भी अतीन्द्रिय को।
प्रच्छन्न सकल स्व पर को देखे, प्रत्यक्ष कहो उस ज्ञान ही को ॥54॥

स्वयं आत्मा भी जब इन्द्रियों से देखता है तब उसका ज्ञान अपूर्ण है—

स्वयं अमूर्त द्रव्य इस जग में मूर्त शरीर को प्राप्त हुआ ।
उस मूर्त से योग्य मूर्त को जाने, नहीं जाने अवग्रह से ॥55॥

इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रिय जन्य ज्ञान भी युगपत् नहीं होता—

विषय इन्द्रियों के होते हैं, स्पर्श रस गंध वर्ण अरु शब्द ।
वे पुद्गल हैं, उन्हें इन्द्रियां ग्रहण नहीं करती युगपत् ॥56॥

इन्द्रियां पर हैं । पर से परावलम्वन है । पर के द्वारा स्वज्ञान सम्भव नहीं—

इन्द्रियां पर द्रव्य कहाती, आत्म स्वभावरूप नहीं वे ।
ज्ञात इन्द्रियों से जो होता आत्म प्रत्यक्ष बने कैसे ॥57॥

पर से होने वाला ज्ञान परोक्ष ज्ञान है प्रत्यक्ष नहीं—

पदार्थ ज्ञान जो पर से होता, वह ज्ञान है परोक्ष कहा ।
मात्र जीव से जो कोई जाने वह ज्ञान प्रत्यक्ष कहा ॥58॥

जो ज्ञान स्वयं आत्मा से पैदा होता है वह ही अनन्त विश्व को जानता है—

स्वयं आत्मोत्पन्न समंत[1] जो अनन्त पदार्थों में विस्तृत ।
अवग्रहादि से रहित विमल वह प्रत्यक्ष ज्ञान एकान्तिक सुख ॥59॥

केवलज्ञान सुख स्वरूप ही है—

केवल ज्ञान नाम सुख का है, परिणाम वही कहलाता है ।
घाति कर्म क्षय प्राप्त बने वह अतः न खेद कहलाता है ॥60॥

केवलज्ञान प्राप्त होने पर अनिष्ट तो नष्ट हो जाता है इष्ट प्रकट होता है—

पदार्थ पार को प्राप्त ज्ञान है, दर्शन फैला लोकालोक ।
सर्व अनिष्ट तो नष्ट हुआ है, प्राप्त हुआ है सब ही इष्ट ॥61॥

घाति कर्म नष्ट होने से उत्कृष्ट सुख उत्पन्न होता है उसका अभव्य को विश्वास नहीं होता—

घाति कर्म जब नष्ट हो गये, सुख प्रकटा सुख में उत्कृष्ट ।
भव्य जो श्रद्धे इन वचनों को, श्रद्धे नहीं वह कहा अभव्य ॥62॥

---

1. सर्व प्रदेशी से ज्ञानतर हुआ ।

चक्रवर्ती वगैरह भी सहज इन्द्रियों से पीड़ित होने के कारण दुःखी हैं—

चक्रवर्ती असुरेन्द्र सुरेन्द्र तो सहज इन्द्रियों से पीड़ित।
दुःख को सह न सकने से वे, रम्य विषयों में करे रमण ॥63॥

विषयों में रति करने वाले तो दुःखी ही हैं—

जो विषयों में रति करते हैं, स्वाभाविक दुःख उनका जान।
स्वाभाविक यदि वह नहीं होवे, न हो विषयों में व्यापार ॥64॥

संसारावस्था में भी शरीर सुख का साधन नहीं है—

स्पर्शनादिक इन्द्रिय जिन आश्रित एसे इष्ट विषय पा आत्म।
स्वयं परिणमन कर बन जाता सुख रूप, नहीं देह कभी ॥65॥

स्वर्गों में भी देह के धारी सुख ना पावे देहों से।
विषय वश से स्वयं आत्मा सुख रूप या दुख रूप बने ॥66॥

आत्मा जब सुख रूप रमण करता है तो विषयों की आवश्यकता नहीं है—

तिमिर हर यदि दृष्टि होवे, लाभ दीपक से न हो।
सुख रूप आतम रमण हो तो, लाभ विषयों से न हो ॥67॥

सिद्ध ज्ञान स्वरूप सुख स्वरूप और देव स्वरूप हैं—

यह सूर्य है ऊष्ण गगन में, और यह तेजोमय देव।
उसी विधि से सिद्ध जगत में ज्ञान सुख और हैं वे देव ॥68॥

इति प्रवचन सार प्रकाश तत्त्व–प्रज्ञापन में आनन्द अधिकार समाप्त हुआ।

अथ शुभ परिणाम अधिकार—

शुभोपयोगी आत्मा का लक्षण—

करे देव यति गुरु पूजा जो सुशील रहे और दान करे।
उपवासादिक में लीन रहे वह आत्मा शुभ उपयोगी रे ॥69॥

शुभोपयोगी वह आत्मा नर तिर्यंच वा देव बने।
उस पर्याय समय तक आतम विविधेन्द्रिय सुख, को भोगे ॥70॥

देवों के स्वाभाविक सुख नहीं है-पंचेन्द्रिय जन्य दुःख ही है-

जिनेन्द्र देव उपदेश सिद्ध नहीं स्वाभाविक सुख देवों के।
देह वेदना से पीड़ित वे रम्य विषय में रमण करें ॥71॥

शुभ और अशुभ उपयोग की पृथक्त्व व्यवस्था नहीं है—

देहोत्पन्न दुख अनुभव करते यदि नर नारक सुर तिर्यन्च ।
जीवों का उपयोग वह दो विधि[1] कैसे शुभ और अशुभ ॥72॥

शुभोपयोग मूल भोगों से वज्रधर आदि में भी सुख का आभास मात्र है—

वज्रधर और चक्रधर, शुभ उपयोगक भोगों द्वारा ।
सुखी भासते भोगों में रत देहादिक वृद्धि द्वारा ॥73॥

शुभ उपयोग जन्य पुण्य विषय तृष्णा ही पैदा करते हैं-

शुभ उपयोग के परिणामों से, यदि उत्पन्न विविध हैं, पुण्य ।
विषयों की तृष्णा होती है देवों तक के जीवों के ॥74॥

और तृष्णा वश यह जीव दुःखी ही देखा जाता है—

जिन जीवों के तृष्णा रहती, तृष्णा से वे दुखी रहें ।
मरने तक विषयों को चाहें, दुख संतप्त होकर भोगें ॥75॥

इन्द्रिय जन्य सुख-दुख ही है-

जो सुख इन्द्रिय जन्य, वह वाधा से युक्त परावलम्बी ।
विच्छिन्न, विषम, और बंध का कारण, इस प्रकार वह है दुख ही ॥76॥

इस प्रकार से पुण्य पाप में नहीं अन्तर है कोई भी ।
जो सिद्धान्त यह नहीं माने, भ्रमण करे संसार में ही ॥77॥

पुण्य और पाप दोनों ही बन्धन कारी हैं यह समझकर उपयोग विशुद्ध बनाये—

इस रहस्य को जान द्रव्य में, राग द्वेष जो नहीं करते ।
उपयोग विशुद्ध वह जन तो, देहोद्भव दुःख का नाश करे ॥78॥

---

1. अर्थात् दो तरह का नहीं है। केवल एक दुःख रूप ही है।

मोहादि के त्याग बिना आत्मा शुद्ध नहीं होता—

छोड़ पाप आरम्भ, पालता शुभ चारित्र जीव कोई।
मोहादिक का त्याग करे बिन, शुद्ध आत्म पाता नाहीं ॥79॥

अरहन्त गुणों को जानने वाला निजात्मा को भी जानता है—

जो अरहन्त गुणों को जाने द्रव्य पर्याय जाने उनकी।
वह आत्मा निज को जाने, क्षीण मोह हो निश्चित ही ॥80॥

मोह दूर कर राग द्वेष छोड़ने वाले शुद्धात्मा बनते हैं—

मोह दूर कर आत्म तत्व को सम्यक प्राप्त किया जिनने।
राग द्वेष को यदि वे छोड़ें, शुद्धात्मा पाया उनने ॥81॥

अर्हन्तों ने भी उसी विधि से कर्मांशों को क्षय किया है—

उसी विधि से अर्हंत् प्रभु ने कर्मांशों का क्षय करके।
जीवों को वह विधि समझाई, नमन करू में विधि पाके ॥82॥

द्रव्यादिक का मूढ़ भाव मोह है—

द्रव्यादिक का मूढ[1] भाव ही मोह नाम पाता है रे।
मोहाच्छादित, राग द्वेष को प्राप्त करें और क्षुब्ध बने ॥83॥

राग द्वेष या मोह रूप जब जीव परिणमन करता है।
विविध बन्ध उसके होता है, अतः उसे क्षय करना है ॥84॥

वस्तु स्वरूप बिना समझे दया भी मोह का कारण है—

वस्तु स्वरूप का सत्य ग्रहण नहीं, दया हो मनु तिर्यन्च प्रति।
मोह का कर्त्ता जीव वह है, विषयों में उसकी संगति[2] ॥85॥

तत्व को सम्यक् जानने से मोह का क्षय होता है—

पदार्थ जाने जब शास्त्रों और प्रत्याक्षादि प्रमाणों से।
मोहोपचय का क्षय हो जाता, अतः शास्त्र सम्यक् जाने ॥86॥

---

1. मिथ्याभाव–विपरीताभि निवेश तत्त्व में संशय जनक भाव।
2. विषयों में इष्ट अनिष्ट कल्पना।

आत्म द्रव्य गुण पर्याय स्वरूप है। इस जिनेन्द्र के उपदेश से जो राग, द्वेष, मोह को नष्ट करता है वह दुःखों से शीघ्र छूटता है—

द्रव्य गुण और उनकी पर्यायें अर्थ नाम से कही गई।
गुण पर्याय स्वरूप आत्म ही द्रव्य कहा, उपदेश यही ॥87॥

जो जिनेन्द्र उपदेश प्राप्त कर राग द्वेप और मोह हने।
भव्य जीव वह अल्प काल में, दुःखों से मुक्ति पावे ॥88॥

स्व और पर के भेद ज्ञान से मोह का क्षय होता है—

ज्ञान स्वरूप निज आत्म द्रव्य और पर निज-निज द्रव्यत्वों से।
जो सम्बद्ध जानता ज्ञानी वह मोह क्षय करता रे ॥89॥

निर्मोहता अतः आत्मा निजकी यदि चाहता हो।
जिन मार्ग से कथित गुणों से स्व और पर को पहचानों ॥90॥

जिन भगवान द्वारा प्ररूपित तत्व श्रद्धा जरूरी है—

श्रमणावस्था में सत्ता[1] संयुक्त सविशेप[2] पदार्थों की।
जों श्रद्धा नहीं करता उसको श्रमण नहीं कहते जिनजी ॥91॥

आगम के ज्ञाता वीतराग मोह के क्षय कर्ता श्रमण साक्षात् धर्म ही है—

मोह दृष्टि हन हो गई जिनकी आगम में वह कुशल रहें।
वीतराग चारित्र निभावें, उसे श्रमण साधु को धर्म कहें ॥92॥

इति प्रवचनसार प्रकाश ज्ञान तत्त्व प्रज्ञापना नाम प्रथम श्रुत-स्कन्ध समाप्त हुआ ॥

---

1. सत्ता संयुक्त—अस्तित्व वाले।
2. विशेप सहित भेद वाले, भिन्न-भिन्न।

—ज्ञेय तत्व प्रज्ञापन—

ज्ञेय का अर्थ जानने योग्य होता है। जिसको ज्ञान जानता है वह ज्ञेय कहलाता है। संसार में छह द्रव्य होते हैं। उनमें एक जीव द्रव्य ही ज्ञायक है, शेष पांच द्रव्य ज्ञेय हैं। जीव स्वयं को भी जानता है और शेष पांच द्रव्यों को भी जानता है। इसलिए जीव ज्ञायक और ज्ञेय दोनों है शेष ज्ञेय हैं।

इस ज्ञेय तत्व प्रज्ञापन अधिकार में द्रव्य का लक्षण बतलाया गया है, द्रव्य में रहने वाले गुणों का तथा द्रव्य की पर्यायों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक द्रव्य सत् स्वरूप है और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त है। जब द्रव्य का पर्याय रूप परिणमन होता है तब पर्याय की अपेक्षा पूर्व पर्याय का विनाश एवं नवीन पर्याय की उत्पत्ति होती है। लेकिन दोनों ही पर्यायों में रहने वाला द्रव्य एक ही है। द्रव्य का नाश नहीं होता वह हमेशा विद्यमान रहता है। इस तरह द्रव्य में उत्पत्ति विनाश और ध्रुवता तीनों रहती हैं और यही द्रव्य का लक्षण है। घट की उत्पत्ति में मिट्टी की पूर्व पर्याय का विनाश होता है, पूर्व पर्याय और नवीन घट पर्याय दोनों में मिट्टी विद्यमान है और इस तरह मिट्टी की ध्रुवता हमेशा बनी रहती है। इसी प्रकार यह जीव भी एक पर्याय छोड़ता है और नवीन पर्याय धारण करता है लेकिन जीव की सत्ता नष्ट नहीं होती जीव द्रव्य की अपेक्षा ध्रुव है नित्य है। पर्याय नश्वर है नाशमान है। एक जीव मनुष्य से देव बना, पर्याय की अपेक्षा मनुष्य पर्याय का नाश और देव पर्याय की उत्पत्ति होती है लेकिन जीव की सत्ता में कोई अन्तर नहीं आया वह जीव ही मनुष्य था और वह जीव ही देव बना इस तरह उत्पाद व्यय और ध्रुवता तीनों द्रव्य में हमेशा बने रहते हैं।

जीव द्रव्य की तरह अजीव धर्म अधर्म आकाश और काल हैं। इन छहों द्रव्यों से यह लोक आकाश गाढ रूप से भरा हुआ है। अलोक आकाश में केवल आकाश द्रव्य है अन्य पांच द्रव्य नहीं है। लोकाकाश में प्रत्येक स्थान पर कर्मवर्गणा भरी हुई हैं। यह जीव राग द्वेष मोह युक्त होता है तब वे कर्म वर्गणायें कर्म रूप परिणमित होकर कर्म रूप बंध जाती हैं। यदि आत्मा इन्द्रिय विषयों को जीत कर केवल निजका ही ध्यान करता है तो वह कर्म से नहीं बंधता।

इसी तरह के विचारों का इस ज्ञेय तत्व प्रज्ञापन में विवेचन किया गया है।

ज्ञेय तत्व प्रज्ञापन
(2)

द्रव्य स्वरूप पदार्थ कहाते, द्रव्य गुणात्मक कहे गये।
द्रव्य और गुण से पर्याय, पर्याय मूढ पर समय कहे ॥93॥

स्व समय और पर समय की परिभाषा—

पर्यायों में लीन जीव, पर समय सदा कहलाते हैं।
आत्म स्वभाव में जो स्थित हैं, स्व समय नाम को पाते हैं ॥94॥

द्रव्य का स्वरूप विस्तार से समझाते हैं—

उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त जो निज स्वभाव नहीं छोड़ें है।
गुण युक्त पर्याय सहित है, उसे द्रव्य जिन कहते हैं ॥95॥

स्वरूपा स्तित्व का लक्षण कहते हैं—

द्रव्यों में जो गुण होते हैं और विवध पर्याय सदा।
उत्पाद व्यय और ध्रौव्य स्थिति से, द्रव्य अस्तित्व स्वभाव कहा ॥96॥

सादृश्य अस्तित्व का लक्षण कहते हैं—

सत् स्वरूप एक है लक्षण जो द्रव्यों का बतलाया।
लक्षण यह सर्वगत बनता, श्री जिनवर उपदेश किया ॥97॥

द्रव्यों से द्रव्यान्तर की उत्पत्ति नहीं होती, द्रव्य से सत्ता का अर्थान्तरत्व नहीं होता—

सत् स्वभाव से सिद्ध द्रव्य है, तत्व यह जिनवर भाषित।
आगम से भी सिद्ध यह है, न माने पर समय वह ॥98॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक होने पर भी द्रव्य सत् है—

स्वभाव स्थित ही द्रव्य सत् कहा, उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित परिणाम।
परिणाम पदार्थ स्वभाव कहाता, अतः द्रव्य लक्षण यह मान ॥99॥

उत्पाद व्यय ध्रौव्य का परस्पर अविनाभाव दृढ़ करते हैं—

उत्पाद भंग विना नहीं होता, भंग विना उत्पाद नहीं।
उत्पाद भंग, ध्रुव पदार्थ विन कभी जगत् में होते नहीं ॥100॥

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से अर्थान्तरत्व नहीं हैं—

उत्पाद ध्रौव्य व्यय पर्यायों में, पर्यायें सब द्रव्यों में।
वस्तु स्वभाव नियम ऐसा है, अतः द्रव्य वह जिन मत में ॥101॥

उत्पादादि का क्षण भेद निरस्त करके वे द्रव्य हैं यह समझाते हैं—

एक समय में ही उत्पत्ति स्थिति और विनाश बने।
यह तीनों समवेत द्रव्य में, अतः त्रितय यह द्रव्य बने ॥102॥

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य को अनेक द्रव्य पर्याय द्वारा विचारते हैं—

उत्पन्न पर्याय है अन्य द्रव्य की, नष्ट पर्याय भी अन्य अरे।
द्रव्य रूप तो ध्रुव स्वरूप है, नष्टोत्पन्न न होता रे ॥103॥

द्रव्य के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य को एक द्रव्य पर्याय द्वारा विचारते हैं—

गुण से गुणान्तर द्रव्य स्वयं ही करे परिणमन सद् अवशिष्ट।
इसीलिये गुण की पर्यायें कहीं गई हैं द्रव्य स्वयम् ॥104॥

सत्ता और द्रव्य अर्थान्तर नहीं होने के सम्बन्ध में युक्ति उपस्थित करते हैं—

यदि द्रव्य सत् नहीं, असद् हो गया, द्रव्य वह फिर कैसे है।
वा सत्ता से अन्य बने वह, अतः द्रव्य स्वयं सत् है ॥105॥

पृथक्त्व और अन्यत्व का लक्षण—

विभक्त प्रदेशत्व पृथक्त्व लक्षण, वीर प्रभु उपदेश यह।
अतद्भाव अन्यत्व वह है, उस रूप नहीं वह कैसे एक ॥106॥

अतद्भाव का लक्षण—

सत् द्रव्य है, सत् गुण भी है, सत् पर्याय सत्व विस्तार।
जो अभाव परस्पर इन में, उसको कहते हैं अतद्भाव ॥107॥

स्वरूप अपेक्षा द्रव्य गुण नहीं, जो गुण है वह द्रव्य नहीं।
अतद्भाव इसको ही कहते, अतद्भाव ना पूर्ण अभाव ॥108॥

सत्ता और द्रव्य का गुण गुणीपना सिद्ध करते हैं—

स्वभाव भूत परिणाम द्रव्य का वह गुण है सत् से अवशिष्ट।
स्वभाव अवस्थित द्रव्य ही सत् है वही यह है जिन उपदिष्ट ॥109॥

गुण और गुणी के अनेकत्व का खंडन करते हैं—

पूर्ण विश्व में द्रव्य विना तो गुण पर्याय नहीं होते।
द्रव्यत्व तो वह भाव है अतः द्रव्य स्वयं सत्ता ॥110॥

द्रव्य के सद् उत्पाद और असद् उत्पाद में अविरोध सिद्ध करते हैं—

द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय से ऐसा द्रव्य स्वभाव में।
सद्भाव और असद्भाव सम्बद्ध उत्पाद को प्राप्त करे ॥111॥

अव सत् उत्पाद को अनन्यत्व के द्वारा निश्चित करते हैं। अर्थात् सव पर्यायों में द्रव्य अनन्य है वही का वही है—

निज परिणति से नर नारक तिर्यन्च मनुज और सिद्ध वने।
द्रव्यत्व छोड़ता क्या परिणमता, किस विधि अन्य हो विन छोड़े ॥112॥

अव असत् उत्पाद को अन्यत्व के द्वारा निश्चित करते हैं—

मनुज देव नहीं, देव मनुज या सिद्ध नहीं हो सकता है।
ऐसा न होकर, अनन्य भाव प्राप्त किस विधि से होता है ॥113॥

द्रव्य नित्य, पर्याय नश्वर है। एक ही द्रव्य के अन्ययना अनन्यपना होने में विरोध नहीं हैं—

द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य सभी हैं, पर्यायार्थिक से अन्य वने।
द्रव्य अन्य में तन्मय जव हो, तन्मय अन्य से अनन्य रहे ॥114॥

सप्त भंगी नय वस्तु कल्पना सात तरह से है—

अपेक्षाकृत वस्तु है, नहीं है, अवक्तव्य है, है नाहीं।
स्यात् अवक्तव्य है अवक्तव्य नहीं, अवक्तव्य है और नहीं ॥115॥

मनुष्यादि कि पर्यायें जीव की क्रिया का फल है। उसका अन्यत्व प्रकाशित करते हैं-

पर्यायों में 'यही है' ऐसा नहीं हैं, स्वभाव निष्पन्न क्रिया भी है।
वीतराग धर्म अफल है केवल, क्रिया राग द्वेषमय सफला है ॥116॥

नाम कर्म के उदय से जीव स्वभाव में पराभव से मनुष्यादि पर्यायें बनती हैं—

नाम कर्म तो निज स्वभाव से, जीव स्वभाव पराभव कर।
मनुष्य करे तिर्यन्च करे या नारक देव पर्याय करे ॥117॥

मनुष्यादि पर्यायों में जीव के स्वभाव का पराभव किस कारण होता है—

नाम कर्म निष्पन्न वस्तुत: नर नारक तिर्यन्च अरु देव।
कर्म रूप परिणमित वे हैं अत: स्वभाव को नहीं उपलब्ध ॥118॥

यद्यपि द्रव्य नित्य है फिर पर्याय अनित्य होने से यह जग क्षणभंगुर है—

क्षण भंगुर इस जग में तो, न जनमे न कोई मरता है।
जो जन्म है वह नाश ही है, जन्म नाश तो नाना हैं 119॥

इसलिए इस संसार में पर्याय रूप क्षण भंगुरता विद्यमान है—

इसलिये कोई नहीं जग में, जिसका स्वभाव अवस्थित है।
संसार तो परिवर्तनशील द्रव्य की एक क्रिया ही है ॥120॥

कर्मों से यह आत्म मलिन होकर कर्म युक्त परिणाम प्राप्त करता है, परिणाम में तन्मयता से कर्म बन्ध होता है—

कर्म युक्त परिणाम, आत्मा कर्म मलिन हो प्राप्त करे।
कर्म बन्ध फिर उससे होता, अत: कर्म परिणाम बने ॥121॥

आत्मा भाव कर्म जो जीवमय क्रिया है, का कर्त्ता होता है द्रव्य कर्म का नहीं-

परिणाम स्वयं आत्मा होता, जीवमय है क्रिया वह।
क्रिया को ही कर्म हैं कहते, द्रव्य कर्म नहीं आत्म करे ॥122॥

आत्मा चेतना रूप परिणमन करता है-चेतना तीन प्रकार की है—

चेतना रूप परिणमन आत्मा का, त्रिधा चेतना होती है।
ज्ञान चेतना, कर्म चेतना, तृतीय नाम कर्म फल है ॥123॥

ज्ञान कर्म और कर्म फल का स्वरूप—

स्व पर पदार्थ का युगपत भासन अर्थ विकल्प ज्ञान होता।
जीव भाव कृत कर्म कहा, कर्म फल सुख दुख कर्मोत्पन्न ॥124॥

ज्ञान कर्म, कर्म फल को आत्मत्वेन निश्चित करते हैं—

परिणामात्मक आत्म जगत् में, ज्ञान, कर्म, कर्मफल परिणाम।
ज्ञान कर्म और कर्मफलों को आत्म कहा तू ऐसा जान ॥125॥

जो एक आत्मा को ही कर्ता करण कर्मफल रूप निश्चय पूर्वक जानता है वह शुद्धात्मा है—

कर्त्ताकरण[1] कर्म कर्मफल आत्मा है यह निश्चय है।
श्रमण यदि इस विधि से जाने, प्राप्त करे शुद्धात्मा है ॥126॥

जीव अजीव दोनों द्रव्य हैं-जी व उपयोग लक्षण है—

जीव अजीव द्रव्य कहलाते, जीव उपयोगमय चेतन है।
अजीव द्रव्य पुद्गल द्रव्यादिक, अचेतन वे कहलाते हैं ॥127॥

लोकाकाश में पांच द्रव्यों का निवास है—

लोकाकाश नाम जिसका है पांच द्रव्य वहां होते हैं।
जीव अजीव और धर्म अधर्म है पंचम काल नाम से है ॥128॥

---

1. आत्मा केवल ज्ञान प्रकट करने के लिए स्वयं ही कर्ता, केवल ज्ञान से अभिन्न होने से स्वयं ही कर्म है। अनन्त शक्ति वाले परिणमन स्वभाव रूप उत्कृष्ट साधन से केवल ज्ञान प्रकट करता है अतः आत्मा स्वयं ही करण है, स्वयं को ही केवल ज्ञान देता है अतः आत्मा स्वयं सम्प्रदान है। मति श्रुति आदि अपूर्व ज्ञान दूर कर केवल ज्ञान प्रकट कर स्वयं सहज ज्ञान स्वभाव द्वारा ध्रुव रहता है अतः आत्मा स्वयं ही अपादान है, अपने ही आधार से केवल ज्ञान प्रकट करता है अतः स्वयं ही अधिकरण है। इस प्रकार छह कारक रूप होकर आत्मा स्वयंभू है ऐसा ज्ञान शुद्धात्मा प्राप्त करता है।

क्रिया रूप और भाव रूप द्रव्य के भाव हैं उनकी अपेक्षा से द्रव्य का विशेष (भेद) निश्चित करते हैं—

पुद्गल जीवात्मक इसी लोक में, उत्पत्ति विनाश और ध्रुवता है।
परिणमन और संघात भेद से, यह तीनों ही होते हैं 129॥

गुणों का भेद से द्रव्यों का भेद होता है—

जीव अजीव द्रव्यों का तो, जो लक्षण ज्ञान कराते हैं।
अतद्भाव विशिष्ट द्रव्य से मूर्त अमूर्त गुण होते हैं ॥130॥

मूर्त अमूर्त द्रव्यों के लक्षण तथा सम्बन्ध बतलाते हैं—

मूर्त गुण पुद्गल के होते इन्द्रिय ग्राह्य अनेक विध हैं।
जो अमूर्त द्रव्य हैं, उनके गुण अमूर्त ही होते हैं ॥131॥

पुद्गल का लक्षण बतलाते हुए शब्द भी पुद्गल होता है यह बतलाते हैं—

स्पर्श वर्ण रस गन्ध चार गुण सब पुद्गल के होते हैं।
सूक्ष्म से पृथ्वी तक सब में, शब्द अनेक विध पुद्गल हैं ॥132॥

शेष पांच द्रव्य अमूर्त हैं—उनका कार्य व वर्णन इस प्रकार है—

जो सबको अवगाह है देता, वह आकाश कहाता है।
गमन हेतु तो धर्म द्रव्य है, अधर्म स्थिति कारण है ॥133॥

वर्तना गुण है काल द्रव्य में, उपयोग गुण जीव का है।
इसी तरह से संक्षेप रूप में अमूर्त द्रव्य गुण वर्णन है ॥134॥

काल द्रव्य को छोड़ कर सभी द्रव्य सप्रदेशी हैं—

जीव द्रव्य और पुद्गल दोनों, धर्म अधर्म आकाश सभी।
असंख्य हैं, स्व प्रदेश कारण, प्रदेश विहीन काल है जी ॥135॥

काल द्रव्य जीव अजीव आश्रित है—

लोक अलोक आकाश युक्त है, धर्म अधर्म युक्त यह लोक।
शेष द्रव्य दो जीव अजीव हैं जिन आश्रित है काल यह एक ॥136॥

प्रदेशत्व व अप्रदेशत्व किस प्रकार सम्भव है—

आकाश प्रदेश जिस विधि जग में है, उस विधि अन्य द्रव्य के जान।
अप्रदेशी तो परमाणु हैं, उसे प्रदेशोद्भव कारण मान ॥137॥

कालाणु अप्रदेशी है—

काल द्रव्य प्रदेश हीन है, एक प्रदेश परमाणु जब।
मन्द गति से अति क्रम करता नभ प्रदेश का, तब वर्तन ॥138॥

एक समय का लक्षण—

नभ प्रदेश एक हैका, जब परमाणु करता अतिक्रम मन्द।
तत्सम एक समय कहलाता, तत्पूर्वापर काल पदार्थ ॥139॥

आकाश प्रदेश का लक्षण—

एक अणु जितने नभ में रहता है वह आकाश प्रदेश।
वह एक भी दे सकता है सब परमाणु को अवकाश ॥140॥

तिर्यक् प्रचय और उर्ध्व-प्रचय बतलाते हैं—

द्रव्यों के जो एक और दो बहुत से वा असंख्येय प्रदेश।
अथवा अनन्त जितने हैं, उतने ही हैं काल समय ॥141॥

काल द्रव्य भी द्रव्य लक्षण युक्त है—

जब काल की एक समय में उत्पत्ति और विनाश बने।
तो वह काल स्वभाव अवस्थित ध्रुव रूप क्यों नहीं बने ॥142॥

कालाणु का सद्भाव एवं उसके अस्तित्व की सिद्धि दर्शाते हैं—

एक समय में यदि काल का उत्पाद ध्रौव्य और नाश बने।
कालाणु सद्भाव यही है, अस्तित्व कालाणु सिद्धि बने ॥143॥

प्रदेश के अभाव में पदार्थ का अस्तित्व नहीं—

जिस पदार्थ का एक प्रदेश अथवा प्रदेश नहीं ज्ञात बने।
उस पदार्थ को शून्य समझलो, अस्तित्व स्थिति नहीं बने ॥144॥

चार प्राण से युक्त जीव सप्रदेश संपूर्ण लोक का ज्ञाता है

सप्रदेश पदार्थों द्वारा लोक समाप्ति होती है।
वह लोक संपूर्ण नित्य है, चार प्राण संयुक्त जीव ज्ञाता ।145॥

चार प्राण जीव के इस प्रकार हैं—

चार प्राण से जीव है जीता इन्द्रिय और बल आयु है।
चतुर्थ प्राण तो श्वासोच्छ्वास है, जिन से जीव कहाता है ॥146॥

यह चार प्राण जीव के स्वभाव नहीं हैं क्योंकि पौद्गलिक हैं—

जीव जगत में चार प्राण से जीता था जीयेगा और जीता है।
फिर भी प्राण स्वभाव नहीं है, पुद्गल द्रव्य से निर्मित है ॥147॥

प्राणों का पौद्गलिकत्व सिद्ध करते हैं—

क्योंकि जीव मोहादि कर्म से बंधा हुआ प्राणों से युक्त।
कर्म फलों का भोग करत है, अन्य कर्म से है बंधता ॥148॥

प्राणों के पौद्गलिक कर्म का कारणपना किस प्रकार है—

यदि जीव यह मोह द्वेष से प्राणों को वाधा करता।
निज हो या पर प्राण वह हो, ज्ञानावरणादिक से बंधता ॥149॥

देह प्रधान विषयों में ममत्व भाव हानि से कर्म मलिन आत्मा पुनः-पुनः प्राण धारण करता है—

देह प्रधान विषयों में जब तक, ममत्व भाव को न छोड़े।
कर्म मलिन कर्म से आत्मा अन्य प्राण फिर से धारे ॥150॥

जब आत्मा केवल निज उपयोग स्वरूप को ध्याता है तो प्राण कर्म बन्धन वह धारण नहीं करता—

इन्द्रियादि विजयी हो रक ज ोउपयोग मात्र आत्मा ध्यावें।
वह कर्मों से रंजित नहीं होता, प्राण सम्बन्ध भी नहीं रहे ॥151॥

आत्मा का अत्यन्त विभक्तत्व सिद्ध करने के लिये व्यवहार जीवत्व के हेतु ऐसी गति विशिष्ट पर्यायों का स्वरूप कहते हैं—

अस्तित्व निश्चित द्रव्य का, जो अन्य द्रव्य में पैदा हो।
भाव वने वह पर्याय कहावे, संस्थानादि भेदों के साथ ॥152॥

पर्याय के भेद बतलाते है—

नर नारकादि चारों पर्यायें, नाम कर्म उदय से हैं।
संस्थानादिक के कारण से अन्य अन्य कहलाती हैं॥153॥

जो द्रव्य को द्रव्य रूप गुण रूप और पर्याय रूप जानता है वह पर द्रव्य में मोह नहीं करता—

त्रिविध कथित और भेदों वाले सद्भाव निवद्ध द्रव्य निज भाव।
उस को जीव जानता, उसके अन्य द्रव्य से मोह अभाव ॥154॥

आत्मा को अत्यन्त विभक्त करने के लिए पर द्रव्य के संयोग के कारण का स्वरूप कहते हैं—

उपयोगात्मक यह आत्मा उपयोग ज्ञान दर्शन दो हैं।
उपयोग वह शुभ अशुभ भेद से दो प्रकार का होता है ॥155॥

शुभ उपयोग से पुण्य और अशुभ उपयोग से पाप संचय होता है—

शुभ उपयोग बने आतम के, संचय पुण्य बने उसके।
उपयोग अशुभ आतम के यदि हो संचय पाप बने उसके ॥156॥

शुभ उपयोग का लक्षण—

जो जिनेन्द्र को जाने प्राणी श्रद्धा करे सिद्ध अनगार।
जीवों के प्रति दया भाव हो, उसके जानो शुभ उपयोग ॥157॥

अशुभ उपयोग का लक्षण—

कुमार्गगामी जो पुरुष कुश्रुति विचार और संगति में।
निज उपयोग लगाता उसके उपयोग अशुभ ही होता है ॥158॥

पर द्रव्य के संयोग का जो कारण अशुद्धोपयोग उसके विनाश का उपाय—

मध्यस्थ अन्य द्रव्य के प्रति हो अशुभोपयोग रहित बनके।
शुभोपयोग युक्त नहीं होकर ज्ञान स्वरूप आतम ध्यावे ॥159॥

आत्मा देह मन और और वाणी से परे है—

मैं तो देह मन वाणी नहीं हूं नहीं कारण हूं मैं उनका।
कर्ता कारक भी मैं नहीं हूं अनुमोदक भी नहीं उनका ॥160॥

देह मन और वाणी पुद्गल द्रव्यात्मक हैं—

देह और मन वाणी को पुद्गल द्रव्यात्मक जिन कहते।
वे पुद्गल द्रव्य जो सब हैं परमाणु द्रव्य पिण्ड होते ॥161॥

देह पुद्गलमय है–आत्मा पुद्गल का कर्त्ता नहीं हो सकता–

मैं स्वयं पुद्गलमय नहीं हूं, कर्ता नहीं उन पिण्डों का।
इसलिए मैं देह नहीं हूं और देह का नहीं कर्ता ॥162॥

अब इस संदेह को दूर करते हैं कि परमाणु द्रव्यों की पिण्ड पर्याय रूप परिणति कैसे होती है—

अप्रदेश परमाणु जो है प्रदेश मात्र और अशब्द वह।
स्निग्ध अथवा रूक्ष होकर के वह द्विप्रदेशादि करता अनुभव ॥163॥

परमाणु के वह स्निग्धत्व और रूक्षत्व किस प्रकार का होता है—

परमाणु परिणमन हेतु एक से लेकर एक एक बढ़ते।
अनन्तपने को प्राप्त न हो तब तक स्निग्धत्व रूक्षत्व होते ॥164॥

स्निग्धत्व और रूक्षत्व से पिण्डपना होता है—

स्निग्ध रूक्ष सम विषम अंशयुत परमाणु परिणाम यदि।
बंधते दो अधिक अंशयुत यदि समान से, जघन्यांश का बन्ध नहीं ॥165॥

परमाणुओं के पिण्डपने में यथोक्त हेतु है—

स्निग्धाणु स्निग्धाणु के संग, रूक्षाणु रूक्षाणु साथ।
बन्ध करे द्विअंश चार संग त्रिअंश पन्चांश के साथ ॥166॥

आत्मा के पुद्गलों के पिण्ड के कर्तृत्व का अभाव निश्चित करते हैं—

स्कन्ध सूक्ष्म और बादर जो हैं द्वि प्रदेशादि संस्थान सहित।
वे पृथ्वी जल तेज और वायुस्वरूप होते निज परिणाम ॥167॥

आत्मा पुद्गल पिण्डों का कर्त्ता नहीं होने के साथ पुद्गल पिण्ड का लाने वाला भी नहीं है—

पुद्गल स्कन्ध कर्मत्व योग्य अयोग्य हैं बादर और सूक्ष्म।
उन सबसे यह लोक सर्वतः भरा हुआ है अति अवगाढ ॥168॥

यह निश्चित करते हैं कि आत्मा पुद्गल पिण्डों को कर्म रूप नहीं करता—

जीव परिणति प्राप्त और कर्मत्व योग्य पुद्गल स्कन्ध।
कर्म भाव को प्राप्त हैं होते, नहीं परिणमाता उनको जीव ॥169॥

यह निश्चित करते हैं कि कर्म रूप परिणत जो पुद्गल द्रव्य उस स्वरूप शरीर का कर्ता आत्मा नहीं है—

कर्म रूप परिणत वे वे सब पुद्गल पिण्ड देहान्तर रूप।
परिवर्तन को पाकर फिर फिर बनते हैं वे जीव शरीर ॥170॥

पांचों तरह के शरीर पुद्गल द्रव्यात्मक होते हैं—

आहारक तैजस और औदारिक वैक्रियिक और कार्मण।
सब शरीर पुद्गल द्रव्यात्मक होते हैं यह जानो भाई ॥171॥

जीव का शरीरादि सर्व पर द्रव्यों से विभाग का साधनभूत असाधारण स्व लक्षण—

जीव चेतना गुण संयुक्त है अरस अरूपी शब्द विहीन ।
गंध रहित अव्यक्त वह है लिंग रहित संस्थान विहीन ॥172॥

ऐसे अमूर्त आत्मा के स्निग्धत्व रूक्षत्व का अभाव होने से बंध कैसे हो सकता है ?

रूपादि गुणयुक्त मूर्त है अतः वन्ध स्पर्शों से ।
उससे विपरीत आत्मा के पुद्गल कर्मों से वन्धन क्यों ॥173॥

आत्मा अमूर्त होते हुए भी कर्मों से वन्ध कैसे करता है यह बतलाते हैं—

रूपादि से रहित आत्मा, द्रव्य गुण जाने देखे ।
उसी तरह से वन्धन करता पुद्गलमय सब कर्मों से ॥174॥

भाव बन्ध का स्वरूप बतलाते हैं—

उपयोगमय यह जीव विविध विषयों को पाकर मोह करे ।
राग करे और द्वेष करे जिससे ही वन्धन रूप धरे ॥175॥

भाव वन्ध की युक्ति और द्रव्य वन्ध का स्वरूप कहते हैं—

जिन भावों से जीव यह विषयगत पदार्थ जाने देखे ।
उन भावों से आसक्तिकर यह जीव वन्धन करले ॥176।

पुद्गल बन्ध जीव बंध और उन दोनों के बंध का स्वरूप कहते हैं—

स्पर्श साथ पुद्गल का वन्धन, रागादि साथ जीव बन्धन ।
पारस्परिक अवगाह वह है, पुद्गल जीवात्मक वन्धन ॥177॥

द्रव्य बंध का हेतु भाव बंध होता है—

आत्मा यह सप्रदेश होता है पुद्गल समूह प्रवेश वहां ।
यथा योग्य रहते और जाते और वन्ध करते हैं वहां ॥178॥

राग का परिणाम भाव बंध है वह द्रव्य वन्ध का कारण होने से निश्चय बंध है—

रागी आत्मा कर्म बांधता, राग रहित मुक्ति पावे ।
निश्चय से संक्षेप वन्ध का, जीवों का इसको जाने ॥179॥

परिणाम का द्रव्य बन्ध के साधकतम राग से विशिष्टपना सविशेष प्रकट करते हैं—

वन्धन तो परिणामों से हो परिणाम राग द्वेष और मोहमयी ।
मोह द्वेष तो अशुभ है होता, राग अशुभ और शुभ होइ ॥180॥

अब विशिष्ट परिणाम के भेद को तथा अवशिष्ट परिणाम को कारण कार्य का उपचार करके कार्य रूप से कहते हैं—

पर के प्रति जो अशुभ भाव हो पाप बने, शुभ पुण्य बने ।
निज के प्रति जो शुद्ध भाव, वे दुःख क्षय का हेतु बने ॥181॥

जीव की स्व द्रव्य में प्रवृत्ति और पर द्रव्य से निवृत्ति की सिद्धी के लिये स्व पर का विभाग बतलाते हैं—

स्थावर और त्रस ऐसे जो, पृथ्वी आदिक हैं जीव निकाय ।
वे जीव से अन्य हैं होते और जीव भी उनसे अन्य ॥182॥

स्व द्रव्य में प्रवृत्ति का निमित्त स्वपर के विभाग का ज्ञान है—और पर द्रव्य में प्रवृत्ति का निमित्त स्वपर का अज्ञान है—

जो इस विधि स्वभाव प्राप्त कर पर और स्व को नहीं जाने ।
मोह युक्त हो यह मेरा है, मैं यह हूं, अध्यवसान करे ॥183॥

आत्मा का कर्म क्या है—

आत्मा निज भावों को करता, निजभाव कर्ता बनता ।
लेकिन पुद्गल मय सर्व भाव का कर्ता वह तो नहीं होता ॥184॥

पुद्गल परिणाम आत्मा का कर्म क्यों नहीं है—ऐसे सन्देह को दूर करते हैं—

पुद्गल मध्य में रहता जीव यह, सभी काल में पुद्गल कर्म ।
निश्चय से नहीं करता यह तो ग्रहण त्याग भी नहीं करता ॥185॥

आत्मा किस प्रकार पुद्गल कर्मों के द्वारा ग्रहण किया जाता है और छोड़ा जाता है—

निज परिणाम का कर्ता होकर, अभी, द्रव्य से उत्पादित ।
कर्म धूलि से ग्रहण और छोड़ा जाता है कभी कभी ॥186॥

पुद्गल कर्मों की विचित्रता ज्ञाना वरणादि रूप को कोन करता है—

शुभ अशुभ परिणमित होता, रागी द्वेषी बन कर आत्म ।
अष्ट कर्म रूप से उसमें कर्म धूलि करती है प्रवेश ॥187॥

आत्मा स्वयं अकेला ही बन्ध है—

समय समय पर कषाय युक्त हो, मोह राग द्वेषों द्वारा ।
कर्म धूलि से बद्ध लिप्त हो, बंध आत्मा सप्रदेशी का ॥188॥

निश्चय व्यवहार का अविरोध बतलाते हैं—

संक्षेप बन्ध यह जीवों का, अर्हंत प्रभु ने उपदेश किया ।
यह तो निश्चित से भाषित है, व्यवहार अन्य विध कहा गया ॥189॥

पर में स्वबुद्धि रखने वाला श्रमण नहीं है—

यह मैं हूं, यह मेरा, है जो देह धनादिक को बोले ।
जो ममता इनसे नहीं छोड़े, श्रमण मार्ग को वह छोड़े ॥190॥

शुद्ध नय से शुद्धात्मा की ही प्राप्ति होती है—

मैं पर का नहीं, पर मेरा नहीं, मैं तो ज्ञान हूं केवल एक ।
इस विधि से जो ध्यान बने तो, ध्याता बनता आतम श्रेष्ठ ॥191॥

आत्मा एक ध्रुव पदार्थ है अतः उपलब्ध करने योग्य है—

आत्मा को मैं इस विधि मानूं, ज्ञानात्मक और दर्शन भूत ।
महा पदार्थ अतिन्द्रिय ध्रुव है, अचल निरालम्ब और शुद्ध ॥192॥

आत्मा के अलावा कुछ भी उपलब्ध करने योग्य नहीं है—

धन सुख दुख और शत्रु मित्र जन और यह तन ध्रुव नहीं है ।
ध्रुव तो केवल एक आत्मा, जो केवल उपयोगात्मक है ॥193॥

शुद्धात्मा की उपलब्धि से क्या होता है यह बतलाते हैं—

इस विधि जान, जो शुद्धात्मा बन परम आत्म का ध्यान करे ।
वह साकार हो, अनाकार हो, मोह ग्रंथि का नाश करे ॥194॥

मोह ग्रंथि का क्षयकर जो जन राग द्वेष का क्षय करते ।
श्रमण बने सुख दुख में सम बन वह अक्षय सुख प्राप्त करे ॥195॥

एकाग्रता रखकर जो आत्म ध्यान करता है वह अशुद्धता नहीं लाता—

मोह तिमिर क्षयकर के जो जन विषय विरक्त मन रोध करे ।
निज स्वभाव में समवस्थित है, वह आत्म का ध्यान करे ॥196॥

शुद्धात्मा को उपलब्ध करने वाले सकल ज्ञानी क्या ध्याते हैं—

घन घाति कर्म का नाश कर दिया सर्व भाव तत्व ज्ञाता ।
ज्ञेय पदार्थ पूर्णता जानी, असंदेह श्रमण किस के ध्याता ॥197॥

शुद्धात्मा को प्राप्त करने वाला सकल ज्ञानी परम सौख्य का ध्यान करता है—

अनिन्द्रिय और अतीन्द्रिय आतम सब बाधा से रहित हुआ।
सब प्रकार सुख और ज्ञान से पूर्ण परम सुख ध्यान किया ॥198॥

शुद्ध आत्मा की उपलब्धि जिसका लक्षण है ऐसा मोक्ष का मार्ग है—

जिन जिनेन्द्र और श्रमण इस विधि सत्य मार्ग जय सिद्ध बने।
उन सब को निर्वाण मार्ग को मेरा नमस्कार माने ॥199॥

आचार्य के मैं साम्य को प्राप्त करू ऐसी अपनी प्रतिज्ञा का निर्वहण करते हैं—

इसी रीति निज आतम के ज्ञायक स्वभाव को मैं जानूं।
निर्ममत्वी अन्य सभी से, बन, ममत्व मैं त्याग करूं ॥200॥

इति प्रवचनसार प्रकाश ज्ञेय तत्त्व प्रज्ञापन द्वितीय श्रुत स्कंध समाप्त।

—चरणानु योग चूलिका—

3

जैसा कि नाम से ज्ञात होता है इस चूलिका प्रकरण में एक गृहस्थ पुरुष किस प्रकार मुनि बन कर अपने पदानुरूप आचरण करता हुआ अपना आत्मा शुद्ध बनाता हुआ निर्वाण प्राप्त करे यह बतलाया गया है। गृहस्थावस्था में भी आत्मा का अन्य द्रव्यों का स्वरूप भलीभांति समझकर संसार के प्रति उदासीन भाव रखता है। वह समझता है कि इस संसार में मैं स्वयं ही अपने गुणों से पूर्ण हूं मुझे पर के एक कण की भी आवश्यकता नहीं है। तथा पर का एक कण भी मेरा नहीं है। अतः संघ के आचार्य के पास जाकर अपने वैराग्य भावों की जानकारी देता है तथा अपने कुलो आदि का भी परिचय देता है तथा आचार्य को मुनि दीक्षा देने की प्रार्थना करता है। आचार्य भी उसकी विधिवत् परीक्षा कर उसको द्रव्य लिंग और भाव लिंग का महत्व समझा कर अट्ठाईस मूल गुणों की प्रतिज्ञा दिलवा कर मुनि दीक्षा देता है। आचार्य को वह मुनि गुरु मानता है और उनकी विनय पूर्वक हमेशा ही आज्ञा मानता है।

काय चेष्टा पूर्वक चलने पर भी यदि कोई शिथिलता दृष्टिगोचर हो तो वह मुनि (श्रमण) स्वयं अपनी आलोचना करके शिथिलता (छेद) को दूर करे और यदि आभ्यन्तर छेद हुआ हो तो गुरु के सामने अपना दोष व्यक्त कर गुरु की आज्ञानुसार प्रायश्चित करे। श्रमण साधु को प्रतिक्षण सावधानी पूर्वक मानसिक वाचनिक एवं कायिक चेष्टाओं की आज्ञा दी गई है। सावधान किसी दोष का भागी नहीं होता और असावधान प्रतिक्षण हिंसा का दोषी माना गया है।

श्रमण को लौकिक जनों से भाषण करना, लौकिक जनों की संगति करना निषिद्ध बतलाया है और कहा है कि लौकिक जनों की संगति संयम भंग करती है। लौकिक कार्यों को करने की भी श्रमण को आज्ञा नहीं है। एक कण में भी परिग्रह के भाव कर्म बन्धन करने वाला है अत श्रमण को बाह्य एवं आभ्यन्तर परिग्रहकात्या ग

होना आवश्यक वतलाया है परिग्रह के पूर्ण त्याग के विना न तो कर्म क्षय होता है और न आत्म सिद्धि होती है।

अतः श्रमण (साधु) को किसी भी प्रकार की एषणा से रहित, पूर्ण परिग्रह का त्यागी संयमित आहार विहारी होना चाहिये। श्रमण को आगम का भी पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक वतलाया है। श्रमण को आगम चक्षु कहा है श्रमण की सुख दुख शत्रु मित्र जीवन मृत्यु सव में चर्या सम होनी चाहिये।

श्रमण भी अपने से अधिक गुण वाले साधु का अभिनन्दन आदर सत्कार करे।

परिस्थितिवश आचार्य श्रमण किसी श्रमण पर आई हुई रोगादि या अन्य विपत्ति दूर करने के लिए लौकिक जनों से संभाषण कर सकते हैं। तथा श्रावकों को सन्मार्ग में लगाने के लिये उपदेश भी दे सकते हैं।

इस तरह के विचार पूर्ण विवेचन का इस चरण योग चूलिका अधिकार में विवेचन किया गया है।

आचार्य कहते हैं कि दुख से मुक्त होने की इच्छा हो तो सिद्ध तीर्थंकर और श्रमणों को नमस्कार कर श्रमण बनो—

इस प्रकार से सव सिद्धों को तीर्थंकर और श्रमणों को।
वारम्वार ही नमस्कार कर श्रमण वनो दुख हरने को ॥201॥

वैराग्य को प्राप्त साधु बनने के लिए क्या करे यह बतलाते हैं—

वन्धु जनों से विदा मांगकर गुरु, स्त्री और पुत्रों से।
मुक्त हुआ, ज्ञान और दर्शन वीर्य चरित तप आचरके ॥202॥

वय कुल रूप विशिष्ट श्रमण को, श्रमण इष्ट गुण पूरण को।
स्वीकारो मुझ को कहकर वह अनुगृहीत हो गणी नमे ॥203॥

संघाचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर इस प्रकार चिन्तवन करे और सहज रूप प्राप्त करे—

पर का मैं नहीं, पर मेरे नहीं, मेरा कुछ नहीं लोक विषे।
ऐसा निश्चयवान जितेन्द्रिय सहज रूप घर होता है ॥204॥

साधु के बहिर्लक्षण—

जन्म समय वत् दिखने वाला, डाढी मुंछ शिर केश उपाड़।
हिंसादि से रहित और प्रति कर्म रहित बहि लिंग श्रमण ॥205॥

साधु के अन्तर लक्षण—

परिग्रह और आरम्भ रहित उपयोग योग शुद्धि संयुक्त।
परावलम्बी कण का भी नहीं, वह भाव लिंग मुक्ति कारण ॥206॥

और वह परम गुरु का उपदेश स्वीकार कर आत्म ध्यान में लीन हो जावे—

परं गुरु से दत्त, उन दोनों लिंगों को ग्रहण करे।
नमस्कार कर गणी श्रमण को सव्रत निज में वास करे ॥207॥

साधु के 28 मूल गुण—

इन्द्रिय रोध लोच आवश्यक व्रत समिति पाल अचेल रहें।
भूमि शयन अस्नान एकाशन, आहार खड़े, नहीं दांत मलें ॥208॥

श्रमण मूल गुण जिनवर भाषित प्रमत्त उनमें श्रमण रहे।
वह श्रमणछेदोंस्थापक आत्म गुणों में लीन रहे ॥209॥

दीक्षा देने वाले गुरु होते है और आत्मा में यदि शिथिलता उत्पन्न हो—उसको पुनः कर्त्तव्य में स्थापित करने वाले निर्यापक कहलाते हैं—

दीक्षा दायक गुरु होते हैं लिंग ग्रहण के समय श्रमण।
छेद द्वय में उपस्थापक हैं वे शेप श्रमण हैं निर्यापक ॥210॥

काय चेष्टा में प्रयत्न पूर्वक चलने पर भी यदि छेद दिखाई दे तो स्वयं वह साधु निज आलोचना करके छेद को दूर करे—

श्रमण की यदि काय चेष्टा प्रयत्न पूर्वक जो चले।
छेद उसमें यदि बने आलोचना पूर्व क्रिया करे ॥211॥

लेकिन यदि आत्म दृढता में छेद उपस्थित हो तो आचार्य को निज अवगुण कह कर उसका आदेश माने—

उपयुक्त छेद में यदि श्रमण हो, जैन मत व्यवहार कुशल।
श्रमण सामने निज अवगुण कह, करे वह जो हो आदेश ॥212॥

पर द्रव्य से पूर्ण भिन्नता आवश्यक है—

भिन्न वास या आत्म वास में या गुरु के सहवास में ।
छेद विहीन श्रामण्य प्राप्त कर पर द्रव्य सम्बन्ध त्यजें ॥213॥

पूर्ण श्रमण का लक्षण—

श्रमण ज्ञान दर्शन में स्थित मूल गुणों को जो पाले ।
प्रयत्नशील रह धर्म निभावे पूर्ण श्रमण वह कहलावे ॥214॥

मुनि को निकट का सूक्ष्म परद्रव्य प्रतिबंध भी श्रामण्य के छेद का आयतन होने से निषेध है—

आहार में उपवास में आवास और विहार में ।
मुनि निवद्धता नहीं चाहे विकथा उपधि श्रमण में ॥215॥

श्रमण की प्रत्येक क्रिया दोष रहित व सावधानी पूर्वक हो—

श्रमण के जो शयन आसन गमन और स्थान हैं ।
असावधान यदि क्रिया है तो, सतत हिंसा धाम है ॥216॥

असावधान हिंसा का दोषी है, सावधान नहीं—

जीव मरे या जिये कहीं पर, अप्रयत [1]आचरण हिंसा है ।
सावधान और समितिवान के, हिंसा मात्र बन्ध नहीं है ॥217॥

प्रयत आचरण से षट् काय वध की हिंसा का दोष लगता है—

अप्रयत आचरण करने वाला, है षट्काय वध का कर्ता ।
प्रयत आचरण कारी जल में कमलपत्र निर्लेप कहा ॥218॥

श्रमण के एक कण का भी परिग्रह त्याग करने योग्य है—

जीव मरे काय चेष्टा से वन्ध वने और नहीं वने ।
परिग्रह निश्चय बंध करे है अतः परिग्रह श्रमण त्यजे ॥219॥

परिग्रह का निषेध अन्तरंग छेद का निषेध है—

निरपेक्ष त्याग विन भाव विशुद्धि भिक्षु के नहीं होती है ।
अविशुद्ध भाव में जो होता है, कर्मक्षय नहीं करता है ॥220॥

त्याग बिना आरम्भ परिग्रह और असंयम होता है ।
पर द्रव्यों में लीन पुरुष के आत्म सिद्धि नहीं होती है ॥221॥

---

1. असावधान

किसी के कहीं कभी किसी प्रकार कोई उपधि अनिषिद्ध भी है ऐसे अपवाद का उपदेश करते हैं—

ग्रहण विसर्जन अरु सेवन में आहारादि से छेद न हो।
ऐसी उपधि में काल क्षेत्र को जान श्रमण चर्या करलो ॥222॥

अनिषिद्ध उपधि का स्वरूप कहते हैं—

अल्प भले हो पर हो अनिन्दित असंयत जन से अति दूर।
रागादि उत्पादक न हो उपधि श्रमण से ग्राह्य वह ॥223॥

उत्सर्ग ही वस्तु धर्म है अपवाद नहीं —

जिनवर प्रभु ने देह परिग्रह माना है मोक्षार्थी के।
अप्रतिकर्मपन कहा देह में, फिर अन्य परिग्रह कहां उसके ॥224॥

अपवाद के भेदों को बतलाते हैं —

जन्म जात जो लिंग जीव का, उपकरण वह जिनमत में।
गुरु वचन और सूत्र अध्ययन, विनय उपकरण जिन मत में ॥225॥

शरीर मात्र जो परिग्रह उसको पालने की विधि बतलाते हैं—

श्रमण कषाय रहित इस जग में निस्पृह होकर रहता है।
अप्रतिबद्ध परलोक प्रति हो युक्ताहार विहारी है ॥226॥

युक्ताहार विहारी अनाहार विहारी ही होता है—

एषण रहित आत्मा जिसका, तप में रत कहलाता है।
एषण दोष रहित वह भिक्षुक, अनाहार मुनि होता है ॥227॥

युक्ताहारी पना कैसे सिद्ध होता है। सो उपदेश करते हैं

देह परिग्रह केवल जिनके, तन भी नहीं अपना मानें।
परिकर्म से रहित साधु निज शक्ति प्रकट कर तप ठाने ॥228॥

युक्ताहारी की व्याख्या करते हैं—

एकाशनी हो आहार करते ऊनोदर यथालब्ध करते।
भिक्षाचरण कर दिन में करते स्वाद रहित मधु मांस बिना ॥229॥

उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री द्वारा आचरण के सुस्थितपने का उपदेश करते हैं—

बाल वृद्ध हो थका हुआ या रुग्ण श्रमण हो जो कोई।
मूल छेद जिस विधि नहीं होवे स्वयोग्य आचरो उस विधि ही ॥230॥

उत्सर्ग और अपवाद के विरोध से आचरण का दुस्थितपना होता है—

श्रम क्षमता और देशकाल को और उपधि को भी जाने।
आहार विहार में श्रमण प्रवर्ते अल्प लेपी वह कहलावे ॥231॥

अतः पदार्थों के वस्तु स्वरुप में एकाग्रता हेतु आगम का स्वाध्याय करो—

एकाग्र श्रमण होता है, यदि वह निश्चयवान, पदार्थों में।
निश्चय आगम से होता है, चेष्टा रख तू आगम में ॥232॥

आगम ज्ञानहीन के कर्मों का क्षय नहीं होता—

स्व पर भेद श्रमण नहीं जाने यदि आगम का ज्ञान न हो।
नव पदार्थ का ज्ञान यदि नहीं, कर्मों का क्षय किस विधि हो ॥233॥

मोक्ष मार्ग पर चलने वालों के आगम चक्षु है—

साधु आगम चक्षु होता इन्द्रिय चक्षु है सब प्राणी।
देव अवधि चक्षु होते हैं, सर्वात्म चक्षु सिद्धज्ञानी ॥234॥

श्रमण आगम से सब कुछ देखता और जानता है—

गुण पर्याय विचित्र द्रव्य में, आगम से यह सिद्ध सुनो।
श्रमण उन्हें भी आगम द्वारा देखें जानें भव्य सुनो ॥235॥

आगम के ज्ञान बिना संयम नहीं और संयम के बिना श्रमणत्व नहीं—

जिसके आगम दृष्टि नहीं है, उसके संयम नहीं रहता।
श्रमण असंयत को नहीं कहते, सूत्र हमें शिक्षा देता ॥236॥

मोक्ष प्राप्ति हेतु आगम का ज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान और संयम सबकी एक साथ आवश्यकता है—

सिद्धि नहीं हो, यदि आगम से श्रद्धा नहीं पदार्थों में।
यदि असंयत श्रद्धाकारी, नहीं जा सकता सिद्धों में ॥237॥

इन तीनों के एक साथ होने से एक श्वास मात्र में असंख्यात गुणी निर्जरा होती है-

जिन कर्मों को यह अज्ञानी लक्ष कोटि भव में छेदे।
उन कर्मों को एक श्वास में, हो त्रिगुप्त ज्ञानी छेदे ॥238॥

आत्म ज्ञान के बिना देहादिक के प्रति पूर्ण ममत्व नहीं हटता—

देहादिक प्रति अणुमात्र भी जिसके मूर्च्छा रहती है।
वह सर्वागमधारी भी हो सिद्धि नहीं पा सकता है ॥239॥

आगमज्ञानतत्वार्थ श्रद्धान और संयम के साथ आत्म ज्ञान की पूर्ण आवश्यकता है-

पंच समिति और तीन गुप्तियुत पन्चेद्रिय व्यापार त्यजे।
जित कषाय संयत कहलाता दर्शज्ञान से पूर्ण श्रमण ॥240॥

श्रमण के लिये सब ही अवस्थायें समान हैं—

स्वर्ण मृत्तिका सुख दुख में सम हो शत्रु मित्र जीवन मृत्यु।
निन्दा और प्रशंसा सब में समता वाला श्रमण कहा ॥241॥

आगम ज्ञानादि तीन आत्मज्ञान और एकाग्रता श्रमण गुण पूर्णता है--

दर्शन ज्ञान चारित्र तीनका युगपत् प्रतिक्षण सेवक हो।
एकाग्रता को प्राप्त यदि हो, श्रमण गुण परिपूर्ण कहो ॥242॥

एकाग्रता के बिना अन्य द्रव्याश्रय होता है जो संसार में रखने वाला है—

श्रमण यदि अन्य द्रव्याश्रित अज्ञानी बन मोह करे।
राग द्वेष का करने वाला विविध कर्म का बन्ध करे ॥243॥

जो अन्य द्रव्याश्रय नहीं होते वे कर्मक्षय कर मोक्षमार्ग प्रशस्त करते हैं—

जो जन राग द्वेष मोहादिक किसी द्रव्य से नहीं रखते।
तो वे साधु निश्चित निशदिन विविध कर्म का क्षय करते ॥244॥

शुभोपयोगी यदि श्रमण है तो वह श्रमण धर्म का पालन नहीं करता—

शुद्धोपयोगी श्रमण कहाते, निरास्रव वे ही होते हैं।
शुभोपयोगी श्रमण जो कोई आस्रव से नहीं बचते हैं ॥245॥

शुभोपयोगी श्रमण का लक्षण—

अर्हन्त सिद्ध में भक्ति जिसके, प्रवचन रत में हो वात्सल्य।
चर्या उसकी शुभ कहलाती शुभोपयोगी वह श्रमण ॥246॥

शुभोपयोगी श्रमणों की प्रवृत्ति बतलाते हैं—

वन्दन नमस्कार श्रमणों का आदर हित अनुगमन करे।
साधु को जो देख खड़ा हो, यह राग निन्दित नहीं रे ॥247॥

---

1. त्रिगुप्त—मन वचन कायकी अज्ञानी प्रवृत्तियों के रोकने से।

शुभोपयोगी सरागी होते हैं—

दर्शन ज्ञान उपदेश करें जो, शिष्य ग्रहण पोषण करते ।
जिन पूजा उपदेश वस्तुतः, चर्या रागीजन करते ॥248॥

चातुर्वर्ण का श्रमण संघ का, जो उपकार करे नित ही ।
काय विराधन रहित वह भी, राग प्रधानी होता ही ॥249॥

शुभोपयोगी भी संयम विरोधी प्रवृत्ति न करे—

षट्काय का करे विराधन वैयावृत्त जो करता हो ।
वह श्रमण नहीं श्रावक होता जिसकी चर्या इस विधि हो ॥250॥

शुभोपयोगी किसके प्रति उपकार प्रवृत्ति रक्खे—

निरपेक्ष और दया भाव से जैनों[1] का उपकार करो ।
अनाकार साकार जो होवे, यद्यपि अल्प लेप तुमको ॥251॥

शुभोपयोगी श्रमण किस समय प्रवृति करे—

भूख प्यास या श्रम से पीड़ित, पीड़ित श्रमण रोग से हो ।
उसकी साधु निज शक्ति लख सब विध वैयावृत्त करो ॥252॥

गुरु बाल या वृद्ध साधु की लौकिक जन से बात करे ।
उनकी सेवा के निमित्त से, शुभोपयोग निन्दित नहीं रे ॥253॥

उपरोक्त चर्या गृहस्थों के लिये पुण्य बन्ध करने वाली है—

यह चर्या प्रशस्तभूत है, श्रमणों के तो गौण कही ।
मुख्य रूप से गृहस्थ चर्या, परम सौख्य दायक है कही ॥254॥

शुभोपयोग को कारण की विपरीतता से फल विपरीतता होती है—

धान्य काल में फल विपरीत दे, बीज कुधूल में पड़ा हुआ ।
उस विधि वस्तु भेद के कारण, प्रशस्त राग विपरीत फले ॥255॥

कारण की विपरीतता और फल की विपरीतता बतलाते हैं—

छद्मस्थ कथन उपदेश मानकर, व्रत नियम अध्ययन दान करे ।
वह मोक्ष को प्राप्त न करता, सातात्मक भाव को प्राप्त करे ॥256॥

---

1. दर्शन ज्ञान प्रधानी जीव

विषय कषाय में रत प्राणी जो, परमार्थ ज्ञान नहीं रखते हैं।
उनकी सेवा, उपकार, दान, कुदेव मनुज गति कारक है ॥257॥

कारण की विपरीतता से फल अविपरीत नहीं होते—

विषय कषाय पाप होते हैं, शास्त्रों में यह प्रवचन है।
विषय कषायों में रत प्राणी, निस्तारक किस विधि से है ॥258॥

अविपरीत फल का कारण ऐसा जो अविपरीत कारण वह बतलाते हैं—

पापभाव को जिसने छोड़ा, समभाव धार्मिकों के प्रति है।
गुण समुदाय का सेवन कारी, सुमार्ग भागी होता है ॥259॥

अविपरीत फल के अविपरीत कारण को विशेष समझाते हैं—

अशुभोपयोग में नहीं रह कर जो, शुद्ध अथवा शुभ में रहता।
वह निस्तारक जग का होता, प्रशस्त रागी भक्त उसका ॥260॥

अविपरीत फल के अविपरीत कारण की उपासना सामान्य और विशेष रूप से करो—

शुद्ध स्वभावी प्रकृत वस्तु को देख, विविध सम्मान करो।
गुणानुसार फिर भेद करो, प्रभु का आदेश इसे मानो ॥261॥

गुणाधिक्य यदि वह श्रमण हो, उठकर उसका मान करो।
पोषण अरु सत्कार करो फिर हाथ जोड़कर विनय करो ॥262॥

सच्चे श्रमण के प्रति पूर्ण सम्मान करो—

सूत्रार्थ विशारद श्रमण यदि हो, संयम तपज्ञानाधिक हो।
नमस्कार कर खड़े रहो और गुणानुवाद भरपूर करो ॥263॥

श्रमणाभास का लक्षण—

संयम तप में लीन और सूत्रों का ज्ञाता भी कोई।
आत्म प्रधान पदार्थ न श्रद्धे श्रमणाभास वह होई ॥264॥

जो श्रमण्य में समान हैं उसका अनुमोदन न करने वाले का पतन है—

शासन स्थित श्रमण देखकर द्वेष करे अपवाद करे।
स्वागतादि क्रिया नहीं करता, निज चरित्र विनाश करे ॥265॥

गुणाधिक्य से सम्मान चाहने वाला मानकषायी होता है वह संसार में भ्रमण करता है।

गुण हीन स्वयं होकर भी जो गुणाधिक्य से निज सम्मान।
यदि चाहता हो कोई तो फिरा करे अनन्त संसार ॥266॥

हीन गुणी का सम्मान चापलूसी है—

श्रमण गुणों में अधिक श्रमण जो, हीन गुणी का मान करे।
मिथ्या उपयोगी कहलावे, चारित्र भ्रष्ट उसका भी हो ॥267॥

श्रमण के लिये जन संसर्ग श्रेयस्कर नहीं है—

कषाय शमन जिसने की हो, तप अधिक करे यदि श्रमण कोई।
तत्वों का ज्ञाता होकर भी जन संसर्गी संयत नहीं ॥268॥

सांसारिक कार्य प्रवृत्ति साधु के लिये यश्रेस्कर नहीं—

दीक्षा ले निग्रंथ-वने और संयम तप से युक्त बने।
सांसारिक कार्य प्रवृत्ति से, साधु भी लौकिक ही तो वने ॥269॥

क्योंकि लौकिक जनों की संगति से साधु असंयत हो जाता है—

संयत साधु असंयत हो यदि लौकिक जन संगति कर ले।
संगति कर सम अधिक गुणीकी यदि दुःखों से मुक्ति चाहे ॥270॥

द्रव्य स्वरुप को न जानने वाले व शंका रखने वाले मिथ्या दृष्टि होते हैं—

द्रव्य स्वरुप निश्चित नहीं जाने अथवा शंका रखते हैं।
विपरीत तत्त्व निश्चित कारी तो, बहुत काल संसार फिरें ॥271॥

और द्रव्य स्वरुप जानने वाले संयमी साधु शीघ्र मुक्त हो जाते हैं—

द्रव्य स्वरुप को निश्चित जाने शान्तात्मा पदार्थ ज्ञाता।
अयथाचार रहित साधुजन अल्पकाल में मुक्त बने ॥272॥

मोक्ष तत्त्व का साधन तत्त्व प्रकट करते हैं—

स्व द्रव्य स्वरुप का निश्चित ज्ञानी छोड़े पूर्ण परिग्रह को।
विषयों में आसक्त नहीं जो शुद्ध श्रमण कहते उनको ॥273॥

मोक्ष तत्त्व को प्राप्त करने वाले श्रमण का अभिनन्दन—

शुद्धोपयोगी प्रतिक्षण रहता, शुद्ध श्रमण को वन्दन हो।
दर्शन ज्ञान नाम उसका ही, वह सिद्ध निर्वाण लहे ॥274॥

अब कुन्द कुन्दाचार्य शिष्य को शास्त्र के फल के साथ जोड़ते हुए शास्त्र समाप्त करते हैं--

जिसकी चर्या साकार या अनाकार बनकर रहती।
प्रवचनसार उपदेश जानकर, प्रवचनसार प्राप्ति होती ॥275॥

इति शुभम्

समापन प्रशस्ति

वीर प्रभु के नाम का संवत् पच्चीस सौ और ग्यारह है।
आज जयन्ती वीर प्रभु की चैत्र शुक्ल त्रयोदश है ॥1॥
इस पावन दिन प्रथम प्रहर में ग्रन्थ पूर्ण हो पाया है।
वीर प्रभु के जन्म दिवस की याद सजग कर पाया है ॥2॥
प्रवचन सार प्रकाश नाम सम गुण भी इसमें भारी हैं।
जो इसका स्वाध्याय करें जन बनें वह भवतारी हैं ॥3॥
कुन्द कुन्द आचार्य प्रभु की वाणी इसमें बिखरी है।
जो वीर प्रभु की दिव्य ध्वनि को साक्षात ले उतरी है ॥4॥
प्रवचन सार इस महा ग्रंथ का पद्यों में है भाव भरा।
जन भाषा हिन्दी में इसका सार प्रभु के चरण धरा ॥5॥
शब्द मेरे नहीं अर्थ मेरा नहीं भाव सीमन्धर प्रभु का है।
'प्रभु' नाम तो निमित्त केवल लिखा प्रभु प्रेरणा से है ॥6॥
वीर प्रभु का शासन काल यह वर्तमान कहलाता है।
सीमन्धर प्रभु विदेह क्षेत्र में वर्तमान अर्हन्ता है ॥7॥
दोनों जग उद्धारक प्रभु को बारम्बार प्रणाम हो।
गुण एक के भी यदि पाऊं जन्म यह साकार हो ॥8॥

प्रवचनसार प्रकाश रचयिता का परिचय

मेरे साथी वर्तमान इस तन का तो यह परिचय है।
जिज्ञासा यदि हो परिचय की, पढलें जो इस विधि से है ॥1॥

जैन दिगम्बर धर्म जाति खण्डेलवाल है।
गोत्र कासलीवाल नाम प्रभुदयाल है ॥2॥

राजस्थान प्रान्त भारत का, जिला नाम तो जयपुर है।
नाम ग्राम का सैंथल है, जो वास्तव में समथल ही है ॥3॥

सैंथल सागर से विख्यात वह, लघु नदी के तट पर है।
रहें भव्य जन यहां बहुत से, जैन और वैष्णव जन हैं ॥4॥

पिता नाम श्री गैंदीलाल, माता श्री गैंखां देवी थी।
इन दोनों के निमित्त मात्र से, पर्याय मनुज की मिल गई थी ॥5॥

उन्नीस सौ नव सत्तर, जो विक्रम संवत् कहलाता था।
शरद् पूर्णिमा रात्रि मध्य में, तन यह जग में प्रकटा था ॥6॥

भाई दो और बहिन एक, जो इस तन के पूर्व हुए हैं।
चिरंजीलाल, कस्तूरचन्द और गुलाबदेवी नाम से हैं ॥7॥

दश वर्ष आयु तक, उसी ग्राम में रह कर शिक्षा पाई थी।
ग्यारह वर्ष मध्य में तो, जयपुर में विधि ले आई थी ॥8॥

दिगम्बर जैन महाविद्यालय, में प्रवेश फिर पाया था।
पूज्य चैनसुखदास का शिष्यत्व लाभ उठाया था ॥9॥

पूज्य बड़े भ्राता श्री कस्तूरचन्द भी मेरे संग आये थे।
दोनों ने ही चतुर्थ श्रेणी में आकर नाम लिखाये थे ॥10॥

दोनों ने स्नातकोत्तर शिक्षा जयपुर में पाई थी।
एम.ए शास्त्री बने भ्रातजी, मुझे भिषगाचार्य पदवी दिलाई थी ॥11॥

आयु वर्ष इक्कीस पढे, फिर गृहस्थ पदवी पाई ।
षोडश वर्षा सरस्वती, लग्न बन्धन से घर आई ॥12॥

सरस्वती फिर वनी रही, सरसवती इस जीवन में ।
पांच पुत्र त्रय पुत्री को, विधिवश ले आई इस जग में ॥13॥

वड़े पुत्र कमलेश, राजेश, अशोक और सुभाष हैं ।
पंचम है राजीव, नाम सुता जो वची उर्मिला और चन्द्रकला हैं ॥14॥

एक वडी दुर्घटना जो इस जीवन में आई है ।
सविता लघुतम पुत्री का जीवन अन्त कराई है ॥15॥

पुत्र वधु हैं चार जो अव तक घर आई हैं ।
प्रथम पुष्पा, मन्जु, राजुल, चतुर्थ उर्मिलादेवी हैं ॥16॥

सुता पति श्री कैलाश और श्री प्रेमचन्द हैं ।
सवही परिवार है अति योग्य और पूर्ण शिक्षित हैं ॥17॥

डाक्टर श्री कस्तूरचन्द कासलीवाल भ्राता हैं विख्यात यहां ।
मुझे वैद्य नाम से कहते, राज्याश्रय में रहा यहां ॥18॥

इस विधि से अट्ठावन वर्ष, मनुज जन्म के पूर्ण हुए ।
आत्म ज्ञान हित तो प्रयत्न विल्कुल भी नहीं हुए ॥19॥

कर्मों के क्षयोपशम से अव कुछ आत्म जागृति आई है ।
वने कार्य यह पूर्ण तो इस जीवन की सफलताई है ॥20॥